नूपुर – 2015

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के
122वें जन्मोत्सव पर
स्मारिका–रूप में कतिपय 'नूपुर'

श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट
(श्री म ट्रस्ट)

कार्यालय : 579, सैक्टर 18–बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन 0172–2724460

मन्दिर : श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ (श्री पीठ)
सैक्टर 19–डी, चण्डीगढ़ 160019

website : http://www.kathamrita.org
email : srimatrust@yahoo.com

आवरण चित्र :

लौकिक विद्या ब्रह्मविद्या-लाभ का सोपान

—श्री म दर्शन, प्रथम भाग, 1990, पृष्ठ २६

श्री म *(एक छात्र के प्रति)*— बोलो तो, पढ़ाई का उद्देश्य क्या है?

वह छात्र— ज्ञान-लाभ।

श्री म— ईश्वर को जानने का नाम ज्ञान है और सब अज्ञान, ठाकुर ने कहा था। हाँ, यह तो हुआ highest point (सर्वोच्च लक्ष्य)। नीचे की steps (सीढ़ियों) को जानने का नाम भी ज्ञान है।

—श्री म दर्शन, सप्तम भाग, पृष्ठ 99

© श्री म ट्रस्ट

सम्पादन : — डॉ॰ नौबतराम भारद्वाज
डॉ॰ (श्रीमती) निर्मल मित्तल

प्रकाशन : प्रेसीडेंट
श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट)
579, सैक्टर 18-बी, चण्डीगढ़ 160 018
फोन - 0172-2724460

मुद्रण : Click Print Shoppe
Sector-17, Chandigarh

आवरण : © iStock.com/Sergey Fesenko

कथामृतकार श्री 'म' की सेवक-सन्तान
स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज को
जो
श्री म दर्शन-ग्रन्थमाला के माध्यम से
श्रीरामकृष्ण-कथा को,
कथामृत में कही-अनकही ठाकुर-वाणी को
हम तक लाए।

'नूपुर' नाम क्यों ?

ठाकुर दक्षिणेश्वर में नरेन्द्र, भवनाथ आदि भक्तों के संग में हैं। ठाकुर गाना गा रहे हैं—

बोल रे श्रीदुर्गा नाम।
(ओरे आमार आमार आमार मन रे)।
...
यदि बोलो छाड़ो-छाड़ो मा, आमि ना छाड़िबो।
बाजन **नूपुर** होये मा तोर चरणे बाजिबो॥*

दीदी जी (श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता) कहा करतीं कि ठाकुर-वाणी का अक्षर-अक्षर है 'नूपुर'। इन 'नूपुरों' की झंकार से सब पाठक ठाकुर का शुद्ध प्यार पाएँ, इस अभिलाषा से ही उन्होंने अपने गुरु महाराज के 101वें जन्म-दिन पर सन् 1994 में स्मारिका-रूप में वार्षिक पत्रिका का प्रारम्भ '**नूपुर**' नाम से किया था। उनका विश्वास था कि ठाकुर-वाणी के पठन-श्रवण-मनन और पालन से व्यक्ति स्वयं बन जाता है माँ के चरणों का 'नूपुर'।

* ओ मेरे मन, तू दुर्गा-दुर्गा नाम बोल। ... यदि कहो छोड़, छोड़, किन्तु मैं नहीं छोड़ूँगा। हे माँ, मैं तेरे चरणों का **नूपुर** बनकर बजूँगा।]

— कथामृत भाग II, सप्तदश खण्ड, द्वितीय परिच्छेद

अनुक्रमणिका

	निवेदन	...	7
1	शिक्षा के क्षेत्र में श्री 'म'	...	11
2	Grammar of Life	...	25
3	श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की शिक्षा— निज का शत-प्रतिशत पालन	...	31
4	शिक्षकरूपे स्वामी नित्यात्मानन्द जी	...	37
5	Swami Vivekananda on Education	...	45
6	माँ सारदा की शिक्षा/सीख	...	53
7	Holy Mother's Method of Teaching	...	57
8	ठाकुर की शिक्षा	...	67
9	What is Real Education?	...	73
10	विविधा :		
	1. हिन्दी श्री 'म' दर्शन का प्रादुर्भाव	...	79
	2. श्री म ट्रस्ट— परिचय, उद्देश्य और गतिविधियाँ	...	87
	3. मास्टर महाशय-स्मृति-समारोह	...	93

श्री 'म' ट्रस्ट

श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के प्रणेता श्री महेन्द्रनाथ गुप्त, बाद में मास्टर महाशय वा श्री म (M.) के नाम से विख्यात हुए।

इन्हीं श्री म के अन्तरंग शिष्य थे स्वामी नित्यात्मानन्द जो 'श्री म दर्शन' ग्रन्थमाला के प्रणेता हैं। और वे ही हैं श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) के संस्थापक।

अपने जीवन में ठाकुर-वाणी का अक्षरश: पालन करने वाले श्री म के पास दीर्घकाल तक रहकर स्वामी नित्यात्मानन्द जी को विश्वास हो गया था कि जगत् के सकल काम-काज करते हुए भी मन से ईश्वर के साथ रहा जा सकता है और यही है शाश्वत शान्ति तथा परमानन्द का सहज, सरल उपाय। परमानन्द की प्राप्ति ही है मनुष्य-जीवन का एकमात्र उद्देश्य। इसी परमानन्द की प्राप्ति जन-जन को हो, इस उद्देश्य से स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने अपने प्रथम गुरु श्री म की स्मृति में 12 दिसम्बर सन् 1967 को श्री म ट्रस्ट (श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट) को रोहतक में रजिस्टर करा दिया था जो बाद में चण्डीगढ़ ले आया गया। तब से लेकर आज तक ठाकुर-कृपा से ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसार का कार्य निरन्तर चल रहा है और आगे बढ़ रहा है।

श्री म ट्रस्ट से जुड़े ठाकुर-भक्तों/सेवकों पर ठाकुर इसी तरह अपना शुद्ध प्यार बनाए रखें, यही उनके श्री चरणों में प्रार्थना है।

—प्रेसिडेंट, श्री म ट्रस्ट

निवेदन

आज के भाग दौड़ भरे जीवन में मोटे-मोटे ग्रन्थ पढ़ने का समय ही कहाँ है किसी के पास? फलतः श्री म ट्रस्ट की आजीवन अध्यक्षा श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के मन में विचार आया कि क्यों न ठाकुरवाणी को जन-जन तक पहुँचाने के लिए उसे अतीव संक्षिप्त रूप में थोड़ा-थोड़ा करके नियमित रूप से परोसा जाए। फलतः सन् 1994 में अपने गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द जी (जगबन्धु महाराज) के 101वें जन्मवर्ष पर स्मारिका के रूप में 'नूपुर' का ठाकुर-इच्छा से प्रकाशन होने लगा।

इस बार के नैवेद्य स्वरूप 'नूपुर' का आलोच्य विषय है—'शिक्षा' एवं श्री श्रीठाकुर, माँ सारदा, स्वामीजी, श्री म, जगबन्धु महाराज तथा श्रीमती ईश्वरदेवी जी के अनुसार उसका स्वरूप। प्रस्तुत नूपुर के लिए उपयुक्त विषय का जब विचार हो रहा था तो जिस प्रसङ्ग ने निर्णयात्मक भूमिका निभाई, उससे निम्न पंक्तियों में ज्यों का त्यों मूल रूप से उद्धृत करना यहाँ अप्रासङ्गिक नहीं होगा :

आचार्य श्री 'म' दैनिक भक्त-सभा में दिनांक 26 सितम्बर, 1923 ईसवी को प्रायः एक दर्जन भक्तों से घिरे बैठे हैं। वे भक्तों के साथ आध्यात्मिक चर्चा में व्यस्त हैं। श्री 'म' के एक प्रश्न के उत्तर में डॉक्टर बक्शी कहते हैं :

> ''काशीमबाजार के महाराज मणीन्द्र नन्दी के सभापतित्व में सभा हुई थी। राँची के ब्रह्मचर्य विद्यालय का वात्सरिक (वार्षिक) अधिवेशन। शिक्षा सम्बन्ध में नाना रूप आलोचना हुई। शिक्षा धर्ममूलक होनी चाहिए। आत्मज्ञान की भित्ति के

ऊपर लौकिक शिक्षा देनी होगी। उससे चरित्र सुगठित होगा। वर्तमान शिक्षा की भित्ति सुदृढ़ मूलहीन है। जभी मानुष तैयार होता नहीं— इत्यादि।

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— तब तो फिर दिखाई दे रहा है, टीचरों को पहले ट्रेनिंग दरकार। और गार्डियनों को पहले contents of men (मनुष्य क्या है), यह जानना दरकार। तदुपरान्त philosophy or plan of education (शिक्षा-प्रणाली)-निर्धारण।

''मनुष्य के भीतर तीन शरीर होते हैं— gross, intellectual and spiritual— स्थूल, सूक्ष्म और कारण। इन तीन शरीरों को ही जिससे क्रमश: वा एक समय में आहार पहुँचे, उसकी व्यवस्था दरकार।

''स्कूल-कॉलिज में तो बीच के शरीर के आहार की व्यवस्था होती है, सूक्ष्म शरीर के। कारण शरीर के संग योग रखकर शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। उससे चरित्र सुगठित होगा। शान्ति, आनन्द आएगा। Highest ideal (सर्वश्रेष्ठ आदर्श) के संग में योग रखकर सब करना होगा। नहीं तो नैतिक चरित्र दृढ़ होगा नहीं। भारत की शिक्षा की इस व्यवस्था के कारण ही भारत की संस्कृति इतनी सुदृढ़ और उच्च है।

''गुरुगृह में इन तीन शरीरों के विकास की व्यवस्था थी। मनुष्य का आदर्श, जाति का आदर्श पहले स्थिर करके प्लान करने से काज होता है उत्तम। नहीं तो जैसे कलसी से जल डालता है, किन्तु सब मिट्टी में गिरता जाता है। ग्लास होता है अनेक दूरी पर। सब श्रम नष्ट होता है।

''हमारे विद्यापीठ में उन्होंने सुन्दर किया है, अनादि महाराज आदि ने। उत्तम सब टीचर तैयार होते हैं। छात्रों के उन तीन शरीरों के ही आहार की व्यवस्था होती है। और teachers भी trained (शिक्षक भी तैयार) होते हैं। अवश्य

> सूक्ष्म शरीर के ऊपर ही जोर देना उचित शिक्षा के समय, कुछ अधिक करके। स्थूल शरीर का संगठन होता है और कारण शरीर में विश्वास भी रहता है संग-संग।''*

इसी प्रसङ्ग ने वर्तमान 'नूपुर' का थीम 'शिक्षा एवं ठाकुर-परिवार की तत्सम्बन्धी अवधारणाएँ' रखने के लिए प्रेरित किया। अतः प्रस्तुत संस्करण में श्री श्रीठाकुर, माँ सारदा, स्वामीजी, श्री म, जगबन्धु महाराज तथा श्रीमती ईश्वरदेवी जी के शिक्षा-विषयक विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

श्री श्रीठाकुर, माँ सारदा तथा उनकी पार्षद सन्तानों का प्यार, आशीर्वाद हम सब पर बना रहे और हमारा परम कल्याण सिद्ध हो, इसी प्रार्थना के साथ प्रस्तुत है 'नूपुर' का यह बाईसवाँ अंक।

— डॉ० नौबतराम भारद्वाज

---

* श्री 'म' दर्शन, चतुर्थ भाग, पृष्ठ 35-36

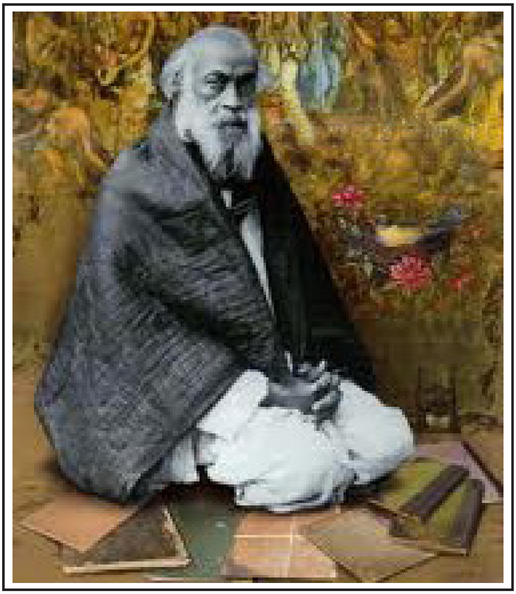

श्री म (मास्टर महाशय)

- पूरा नाम : श्री महेन्द्रनाथ गुप्त
- जन्म : शुक्रवार, नाग पञ्चमी, 31वाँ आषाढ़, 14 जुलाई, 1854 ईसवी।
- स्थान : कोलकता में शिमुलिया मोहल्ले की शिवनारायण दास लेन।
- माता–पिता : श्रीमती स्वर्णमयी देवी और श्री मधुसूदन गुप्त— वैद्य ब्राह्मण वंश।
- भाई–बहन : 4 भाइयों और 4 बहनों में तीसरी सन्तान।
- विवाह : सन् 1873 में श्रीमती निकुञ्ज देवी के साथ।
- शिक्षा :
  - सन् 1867 में आठवीं कक्षा से डायरी लेखन।
  - हेयर स्कूल से दसवीं की परीक्षा में द्वितीय स्थान।
  - गणित का एक पेपर न दे सकने पर भी एफ.ए. में 5वाँ स्थान।
  - सन् 1875 में प्रेज़िडेंसी कॉलेज से बी.ए. में तृतीय स्थान।
  - पूर्वी और पश्चिमी विद्याओं में निपुणता।
- गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस
- गुरु–लाभ : 26 फरवरी, सन् 1882 को रविवार के दिन।
- महासमाधि : शनिवार, 4 जून, सन् 1932 ईसवी को प्रातः 5.30 बजे।

■

1

शिक्षा के क्षेत्र में श्री ‘म’

मेधावी छात्र

महेन्द्रनाथ गुप्त वा मास्टर महाशय वा श्री म अपने विद्यार्थी जीवन में रहे अति मेधावी छात्र। एन्ट्रेंस परीक्षा में उन्होंने सारे विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान प्राप्त किया था। एफ०ए० की परीक्षा में उन्होंने पञ्चम स्थान पाया, गणित का एक पर्चा न देकर भी। बी०ए० में तृतीय स्थान अधिकार किया। लॉ पढ़ते समय पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त इन्होंने मनु, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति प्रभृति ऋषियों द्वारा प्रणीत संहितादियों का भी अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त छात्रावस्था में ही इन्होंने पाश्चात्य दर्शन, साहित्य, इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्रादि विषयों में विशेष पाण्डित्य अर्जन कर लिया। संस्कृत-पुराण और काव्यशास्त्रादियों पर भी उनका विशेष अधिकार था। अनेक श्लोक उन्हें कण्ठस्थ थे। षड्दर्शन, जैन और बौद्धदर्शन भी उन्होंने देख/पढ़ रखे थे। ज्योतिष और आयुर्वेद का भी उन्होंने अध्ययन किया हुआ था।

कार्य-रूप में उन्होंने अध्यापन-कार्य स्वीकार किया।

अनेक स्कूलों में वे हैडमास्टर रहे। कॉलिजों में ये अंग्रेज़ी, इतिहास, दर्शन तथा अर्थशास्त्र का विशेष अध्यापन करते रहे।*

उच्च श्रेणी के शिक्षक

श्री म स्वयं अति उच्च श्रेणी के शिक्षक थे। श्री म को श्रीरामकृष्ण ने प्रथम मिलन के पश्चात् से ही सर्वविषय में स्वावलम्बन की शिक्षा दी थी। श्री म ने जीविकार्जन के लिए अध्यापन-कर्म को वरण किया था। जब वे श्रीरामकृष्ण से मिले तब उन्होंने उस कर्म का केवल अनुमोदन ही नहीं किया था, बल्कि उस कर्म को जारी रखने के लिए वे उन्हें प्रोत्साहित भी किया करते थे।

''ठाकुर कहते'', श्री म के मुख की वाणी है, ''अध्यापना है ऋषियों का कर्म। अति शुद्ध कर्म। छल, चातुरी नहीं। ब्रह्मज्ञान साधन के अनुकूल होता है। ब्रह्मविद्या के पीछे ही लौकिक विद्या का स्थान है। विद्या के अनुशीलन से बुद्धि तीक्ष्ण और परिष्कृत होती है। यही बुद्धि ब्रह्मबोध की सहायक है। और एक बात, शास्त्र-कथित चार प्रकार के दानों— अन्नदान, जीवनदान, विद्यादान और ब्रह्मविद्या-दान में विद्यादान का स्थान तृतीय है। इसके पीछे ही है ज्ञान-भक्ति दान। निष्काम भाव से करने पर यह विद्यादान ही ब्रह्मज्ञान देगा।''**

श्री म ने अपना सारा जीवन शिक्षाव्रत में ही व्यतीत किया। ...वे लड़कों के स्तर पर नीचे उतर कर उन्हें पढ़ाया करते— इतने सुपण्डित, मेधावी होने पर भी। साधारणत: शिक्षक छात्रों को पुस्तक के विषयों पर बतलाए चले जाते हैं— छात्र ग्रहण कर सके हैं या नहीं, यह नहीं देखते। किन्तु श्री म पहले

---

* श्री म दर्शन-I, द्वितीय संस्करण, आचार्य श्री म की संक्षिप्त जीवनी, पृ० 53-56

** नूपुर-96, पृष्ठ 20-21 (उत्तम वैद्य श्री म)

देखा करते, लड़का कितना ले सकता है, और किस उपाय के साथ देने से ले सकता है। नक्शा, छवि, डायाग्राम आदि नाना उपायों का अवलम्बन लेते जिससे लड़के देखकर सीख सकें।... वे क्या केवल लड़कों को ही सिखाते थे, यह नहीं— शिक्षकों को भी सिखाते थे भली प्रकार पाठन-प्रणाली।*

'कथामृत' के लेखक श्री 'म' ठाकुर की देह चले जाने के पश्चात् अपने पास आए जनों को ठाकुर-वाणी सुनाया करते। संसार के ज्वलन्त अनल से दग्ध आगन्तुक जनों के मन-प्राण इस ठाकुर-वाणी को सुनकर शीतल होते। श्री म के अन्तरंग शिष्य स्वामी नित्यात्मानन्द इस ठाकुर-वाणी व ठाकुर-वाणी पर श्री म का भाष्य सुनकर डायरी में नोट कर रखते। बाद में इन्हीं डायरियों के आधार पर उन्होंने श्री म दर्शन (16 भाग) लिखा बंगला में। पीछे इसी बंगला से श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता (ट्रस्ट की द्वितीय प्रधान) द्वारा हिन्दी में अनुवाद हुआ और उनके पति प्रो० धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ। हिन्दी में यह अनुवाद छपा 'श्री म दर्शन' नाम से ही और अंग्रेज़ी में छपा 'M. the Apostle and the Evangelist' नाम से 16 भागों में। श्री म दर्शन में अन्य अनेक विषयों के साथ-साथ 'शिक्षा' पर भी श्री म के विचार यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उनमें से कुछेक विचार पाठकों की जानकारी हेतु प्रस्तुत हैं :

प्राचीन व वर्तमान शिक्षा में अन्तर

प्राचीन काल की शिक्षा से वर्तमान की शिक्षा किस प्रकार भिन्न है, श्री म बता रहे हैं—

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— नहीं, इस शिक्षा से बिल्कुल भी चरित्र गठित नहीं

---

* श्री म दर्शन-I, द्वितीय संस्करण, भूमिका, पृ० 39

होता। कैसे होगा? धर्म शिक्षा का नाम भी नहीं है। भगवान् में विश्वास बिना रहे चरित्र गठित नहीं होता।

(ललित के प्रति)— लड़कों-बच्चों की शिक्षा के लिए ठाकुर-घर (मन्दिर) बनाने की प्रथा थी। अब और वह पार्ट नहीं है। बालकों को ठाकुरसेवा सिखानी चाहिए। फूल तोड़ना, चन्दन घिसना, घर साफ करना, बर्तन माँजना, माला गूँथना, धूप, दीप देना इत्यादि अति बालकपन से सिखाना आवश्यक है। और भी एक संस्कार मन में पड़ जाता है। बड़े होकर जब संसार में धक्के खाएगा, तब यह संस्कार काम आएगा। तब उन सबको श्रद्धा सहित करेगा। प्रथम अभ्यास, तब फिर श्रद्धा।

...

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— आजकल मठ में एम०ए०, बी०ए० पास अनेक जन साधु आए हैं। और फिर बी०एल० भी हैं। एक तो सीतापति (स्वामी राघवानन्द) हैं। उनका नाम चारों ओर फैल रहा है। इन लोगों का कितना brilliant prospect (उज्ज्वल भविष्य) था। उनका नाम सुनकर संसार का यह सब छोड़कर आ गए हैं। जहाँ पर भी जो फूल खिलता है, वही मठ में आकर उपस्थित हो जाता है। इन फूलों की माला देव-सेवा में लगेगी। कैसी सुन्दर ट्रेनिंग मठ में हो रही है— मन, प्राण सर्वस्व देकर भगवान् की सेवा करना सिखाया जाता है। सर्वभूत में भगवान् का अधिष्ठान जानकर वे ईश्वर की सेवा करते हैं। यही तो है सच्चा वेदान्त। मठ जैसे युनिवर्सिटी का पोस्ट ग्रेजुएट डिपार्टमेंट है। सेवाहीन शिक्षा, शिक्षा ही नहीं। गुरु-गृह में यह सब होता था, सेवा के संग शिक्षा, head and heart (विद्या-बुद्धि) के संग हृदय के सम्मिलन की शिक्षा।

"भारतीय दृष्टि से केवल रुपया बनाना, घर-मकान बनाना, गाड़ी-घोड़ा, नाम-यश करने के लिए शिक्षा, शिक्षा ही नहीं है। यदि इसको ही education (शिक्षा) कहते हैं तब तो तुम से कहना पड़ता है, at the risk of the ideal and tradition of your country (भारत के आदर्श और अतीत इतिहास को विसर्जित करके) यह शिक्षा है।

''मठ के साधुओं की जो शिक्षा होती है, यही है इस देश की धारा। ईश्वर विश्वास, गुरु-सेवा, वृद्ध-सेवा, समाज-सेवा, दरिद्र नारायण-सेवा के संग में लौकिक विद्या का वहाँ पर मिलन है। इससे culture (संस्कृति) होती है और चरित्र सुगठित होता है। ढेर सी पुस्तकें मुखस्थ करने को शिक्षा नहीं कहा जाता। स्वामी विवेकानन्द ने वैसा ही कहा था, इधर जो कुछ सीखा है, वह समस्त भूल सकूँ तो बचूँ।''*

शिक्षक निर्माण

अपने अन्तरंग शिष्य स्वामी नित्यात्मानन्द (पूर्व का नाम 'जगबन्धु') को श्री म ने तैयार किया 'आदर्श शिक्षक'। श्री म ने उन्हें पत्र कैसे लिखा जाता है, डायरी किस प्रकार लिखनी चाहिए, कहीं लैक्चर सुनने जाना हो तो कौन-कौन सी बातें ध्यान से सुनकर स्मृति में रख लेनी चाहिएँ, फिर ईश्वरीय विषयों पर किस प्रकार बोलना चाहिए, पैसों का हिसाब कैसे रखा जाता है, खरीदारी करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना है आदि-आदि समस्त छोटी-छोटी बातें सिखाईं। फिर पुस्तक की छपाई के समय किन-किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए, वह भी सिखाया। **

उत्तम शिक्षण पद्धति

श्री म *(शिक्षक के प्रति)*— कल युनिवर्सिटी में vernacular medium— शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होने की बात उठी है।...

शिक्षक— इतने दिनों में समझ सका हूँ substance (सारांश) लिखने का अर्थ क्या है? पाठ्यव्यवस्था में मुखस्थ करके केवल उद्धार करता आया हूँ।...

---

* श्री 'म' दर्शन, सप्तम भाग, पृष्ठ 85-86

** श्री म दर्शन-I, द्वितीय संस्करण, भूमिका, पृ० 35-37

...

अब बिना समझे मुखस्थ नहीं करना पड़ता छात्रों को। इतिहास पढ़ाने के समय नूतन प्रणाली अवलम्बन करने से लड़कों का खूब उपकार हो रहा है। प्रश्न करके जबानी पॉयन्टस बनाकर उत्तर बोल देते हैं और मैप (नक्शे) पर स्थान दिखा देते हैं। इससे देख रहा हूँ लड़के जबानी ही सीख लेते हैं, पुस्तक तो प्राय: पढ़नी ही नहीं पड़ती।

अंग्रेज़ी भी सुन्दर भाव से हो रही है। कोई-सा एक पाठ आरम्भ करने के पूर्व समस्त विषय बंगला में कहानी की तरह बोल देता हूँ। तत्पश्चात् प्रधान-प्रधान प्रश्न क्या हो सकते हैं, वे भी उत्तर सहित बोल देता हूँ। बीच-बीच में दो-एक लड़कों से भी पूछ लिया जाता है। इससे मनोयोग भी होता है और सुनकर बोलने का अभ्यास हो जाता है। इस के पश्चात् पाठ आरम्भ होता है।

श्री म— इसमें भी मैप पर दिखावें स्थान का नाम, अथवा व्यक्ति का नाम आने पर। इससे आँख से देखकर, कान से सुनकर सीख जाएगा। व्यर्थ मस्तिष्क पर बोझ नहीं होगा। इतिहास, भूगोल, साहित्य इन समस्त विषयों में मैप दिखाकर पढ़ाना खूब अच्छा है। इससे idea— भाव localised—स्थायी हो जाता है। छवि से भी काम होता है। कान से सुनकर मस्तिष्क में जाने से, आँख द्वारा देखकर और कान द्वारा सुनकर जाने पर अधिक काम होता है— कारण दोनों इन्द्रियों का काम हो जाता है। घटना के स्थान पर जा सकें तो और भी अच्छा होता है, स्पर्श हो जाता है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को जितने भी कामों में लगाया जाएगा, ज्ञान-लाभ उतना ही सहज होगा। मस्तिष्क का काम बच जाएगा। 'सन्देश' क्या है, इस पर लेक्चर न देकर उसे आँखों में दिखा कर— नाक से सुंघाकर, मुख में देने से लड़का झट से सन्देश का ज्ञान लाभ कर लेगा। रस और गन्ध ये दोनों ही पूरा निश्चय करवा देंगे सहज में ही। चक्षु, कर्म, नासिका, जिह्वा, त्वचा— इन पाँच इन्द्रियों का जितना अधिक व्यवहार करेगा, उतना ही ज्ञान-लाभ करना सहज होगा।

मातृभाषा में शिक्षा

श्री म मातृभाषा में शिक्षा दी जाए, इसके पक्षधर हैं।

शिक्षक— एक अंश का संक्षेप में सार-सार बंगला (मातृभाषा) में बोल देता हूँ। लड़के बंगला में लिखकर फिर अंग्रेज़ी में अनुवाद करते हैं। देखा जाता है बंगला में भाव को शीघ्र पकड़ सकते हैं लड़के। भाव ठीक हो तो भाषा में प्रकाश के समय कष्ट कम होता है, और भूल भी कम होती है।

श्री म— केवल हमने ही जो बंगला में आरम्भ कर दिया है, वैसा नहीं है। अब कलकत्ता युनिवर्सिटी में भी उसी सम्बन्ध की आलोचना हो रही है। इससे greatest amount of work (सबसे अधिक काम) होता है shortest time (अत्यन्त अल्प समय) में और easiest way (अति सहज) में।*

आज ना भी हो तो कल तो करना ही होगा। मातृभाषा बिना शिक्षा हो ही नहीं सकती। अंग्रेज़ों ने जबरदस्ती चला दी है। यह रहेगी नहीं, रह सकती नहीं। अस्वाभाविक वस्तु स्थायी नहीं होती। जगत् के सब ही देश अपनी मातृभाषा में शिक्षा पाते हैं— यही है स्वाभाविक। और फिर केवल हम लोग ही इस विषय की चिन्ता करते हैं, यह बात नहीं है। हमारा दोष है कि पूर्व से ही बंगला पढ़ाना introduce (प्रचलित) कर दिया है। आशुबाबू (आशुतोष मुखर्जी) भी इस विषय की चिन्ता करते हैं। उनकी प्रेरणा से युनिवर्सिटी में भी इस विषय पर जोर की आलोचना होती है। आशुबाबू ने उस दिन लाहौर यूनिवर्सिटी के Convocation address (समावर्तन भाषण) में मातृभाषा में पढ़ाने की प्रशंसा की है। उन्होंने कहा, मातृभाषा में शिक्षादान— fraught with possibilities which even the best amongst us cannot foresee—का भविष्य कितना उज्ज्वल है, उसे हमारे श्रेष्ठ शिक्षाविशारदगण अभी भी समझ नहीं सकते।**

परा विद्या, अपरा विद्या

विद्या दो प्रकार की है— अपरा विद्या और परा विद्या। लौकिक

* श्री म दर्शन भाग 5, प्रथम संस्करण, पृ० 67-68

** श्री म दर्शन, V, पृ० 74-75

पदार्थों का ज्ञान देने वाली विद्या अपरा विद्या कहलाती है। स्कूल, कॉलिज में दी जाने वाली शिक्षा अथवा ज्ञान अपरा विद्या के अन्तर्गत ही है। जिस विद्या से आत्मा-परमात्मा का, ईश्वर का, ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है, उस विद्या का नाम है— परा विद्या। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए श्री म कह रहे हैं—

''वेद भी अपरा विद्या है। उससे यदि ईश्वर को नहीं प्राप्त किया जाता, तो फिर दो पन्ने पढ़कर क्यों इतना अहंकार? इससे यदि उनकी प्राप्ति हो जाती तो रक्षा नहीं थी। ठाकुर ने क्या पढ़ा था?''

''परा विद्या— 'यया तदक्षरमधिगम्यते' (जिससे उस अविनाशी अक्षर को जाना जाता है।)— ज्ञान, भक्ति। प्रयोग जान लेने पर अपरा विद्या भी पर विद्या लाभ में सहायक हो सकती है। पूजा, पाठ, जप, ध्यान— ये सब अपरा विद्या के अंग होने पर भी निष्काम भाव में करने पर, ईश्वर लाभ-जन्य करने पर, इनके द्वारा भी परा विद्या लाभ हो सकता है। उनके लिए हों तो ये सब अच्छे हैं। नहीं तो और भी दृढ़तर बन्धन का कारण बन जाते हैं।''*

'ईश्वर को जान लेने पर सब जाना जाता है', इस वेदान्त कथन की व्याख्या करते हुए श्री म कह रहे हैं—

श्री म *(सकल के प्रति)*— वेद में है, 'कस्मिन्नु खलु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातम् भवति' (भगवन्, किस तत्त्व के जान लेने पर सब जाना जाता है?) ऋषि शौनक नैमिषारण्य गुरुकुल के कुलपति (Chancellor) थे, वहाँ पर दस हजार विद्यार्थी थे। ऋषि शौनक ने सांसारिक विद्या का शेष नहीं होता देखकर, और विद्या से चित्त शान्त नहीं होता समझकर, ऋषि अंगिरस से प्रश्न किया था, 'कौन सी विद्या प्राप्त कर लेने पर सर्वविद्या लाभ होता है?'

---

* श्री म दर्शन, X, पृ० 70-71

उन्होंने उत्तर दिया था, परा विद्या प्राप्त कर लेने पर अर्थात् ईश्वर को जान सकने पर सर्वविद्या-लाभ होता है।''*

शिक्षा का उद्देश्य

श्री म *(एक छात्र के प्रति)*— बोलो तो, पढ़ाई का उद्देश्य क्या है?

वह छात्र— ज्ञान-लाभ।

श्री म— ईश्वर को जानने का नाम है ज्ञान और सब अज्ञान। ठाकुर ने कहा था— हाँ, यह तो हुआ highest point (सर्वोच्च लक्ष्य)। नीचे की steps (सीढ़ियाँ) को जानने का नाम भी ज्ञान है। स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई से इनका पता लगता है। मनुष्य की बुद्धि ज्ञान-स्वरूप ईश्वर को जानने के लिए नाना चेष्टाएँ करती है। उस चेष्टा के संग-संग अनेक नए विषय निकले हैं। और फिर किसी-किसी ने तो किसी नूतन विषय को जानने के लिए जाकर ज्ञानस्वरूप ईश्वर का सन्धान पा लिया है। यह कैसे? जैसे काँच बटोरते हुए, काँचन लाभ करना।

''इसमें क्या कम परिश्रम होता है? इससे perseverance, attention, application (अध्यवसाय, मनोयोग, प्रयोग) आदि गुण समूह परिपुष्ट होते हैं।

...

''जो समझता है, ऐसी पढ़ाई अच्छी है, वह इच्छा करने से ईश्वर के पथ में भी अच्छा हो सकता है। यही मन ही मोड़ फिरा देने से ईश्वर-लाभ करता है।''**

...

''Culture (संस्कृति) कौन सी है— पाण्डित्य, अथवा आत्मदर्शन, ब्रह्मदर्शन?''

एकजन भक्त— आपके ही मुख से सुना है, सूक्ष्म-शरीर को आहार दरकार

---

* श्री 'म' दर्शन, दशम भाग, पृष्ठ 74

** श्री म दर्शन, सप्तम भाग, पृष्ठ 99-100

है। उसके द्वारा बुद्धि तीक्ष्ण होती है— power of judgement and reasoning (युक्ति और विचार-बुद्धि) प्रबल होते हैं। उसके द्वारा ब्रह्मविचार चलता है।

श्री म— हाँ, वह तो ठीक है। अन्त में पाण्डित्य त्याग कर साधन में लग जाता है। पुस्तक, पोथी तब परे फेंक देता है। किस प्रकार वस्तुलाभ होता है, उसके लिये व्याकुल हो जाता है।

''विद्या है means (उपाय), end (उद्देश्य) नहीं; end (उद्देश्य) है ब्रह्म-दर्शन।''

''बहुत-सी बातों को निगलने का नाम विद्यालाभ नहीं है। इससे यदि चित्त एकाग्र नहीं होता, तो फिर सब ही निष्फल है।''

''विद्या छोड़कर साधन में लगना। तत्पश्चात् वस्तुलाभ (ईश्वर-लाभ) होता है। तब बालक की अवस्था हो जाती है, जैसे ठाकुर। वेद में ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञानी की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन है। 'पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्'। (पाण्डित्य छोड़कर बालकवत् हो जाता है।) मौन हो जाता है, तब वस्तुलाभ करता है।''

''ठाकुर कहा करते थे, विद्या और विचार का शेष है विश्वास— गुरुवाक्य पर विश्वास। तत्पश्चात् साधन, गुरु का उपदेश लेकर। अन्त में ईश्वर की कृपा से वस्तुलाभ होता है।''

''जिसको गुरुवाक्य पर विश्वास नहीं होता, उसके लिये ही है पढ़ने की व्यवस्था। सब प्रकार से रगड़, घोटकर देखता है इसमें कुछ नहीं है, तब गुरुवाक्य पर विश्वास करता है— यह सैकण्ड क्लास का। जिसका प्रथम से ही गुरुवाक्य में विश्वास है— वह फर्स्ट क्लास। समस्त अभिमान छोड़कर दीन बिना हुए उनको नहीं प्राप्त किया जाता।''

''वेद में नारद की गल्प है। सर्वविद्या पाकर भी नारद को शान्ति नहीं मिली। तब ऋषि सनत्कुमार के उपदेश से सकल अभिमान छोड़कर दीनभाव से साधन करके ब्रह्मदर्शन हुआ। तब शान्ति।''

"श्वेतकेतु की भी यही अवस्था हुई थी। विद्या-लाभ करके 'अनुचानवाची' (दम्भी) हो गए, अर्थात् अभिमानी हो गए। उन्होंने भी पिता आरुणि ऋषि के उपदेश से दीनभाव में साधन करके आत्मज्ञान लाभ किया। तब शान्ति।"

"शौनक इसी प्रकार विद्यालाभ करके अशान्त हो गए। वे भी दीनभाव में ऋषि अंगिरस के निकट शरणागत हुए। उनके उपदेश से ब्रह्मविद्या लाभ की। तब शान्त हुए।"

"किन्तु सत्यकाम जाबालि ने प्रथम से ही गुरुवाक्य पर विश्वास करके, गायें चराते-चराते ब्रह्मज्ञान लाभ किया।"

श्री म *(भक्तों के प्रति)*— विद्यालाभ इसलिए करना उचित है कि इस बात का पता लग जाए कि इससे (इस विद्या से) 'परां शान्तिं' प्राप्त नहीं होती। तर्क प्रधान व्यक्तियों के लिए यह समस्त जानना आवश्यक है। उनका संशय तो किसी प्रकार भी नहीं जाना चाहता। इस बात को समझकर, सब पुस्तकों आदि को दूर फेंककर, 'माँ, माँ' कहकर क्रन्दन करना है उचित।

"ठाकुर ने रो-रो कर ब्रह्मज्ञान-लाभ किया था। इस युग के लिए यह सीधा, सहज पथ है। ठाकुर ने जभी तो लोकशिक्षा जन्य यही पथ लिया था। कलि का जीव है दुर्बल। मन में बल नहीं। अन्नगत प्राण है, आयु कम। मन चञ्चल। जभी ठाकुर की व्यवस्था है— शरणागत होकर रोना। इससे कार्य हो जाएगा।"

"उनका सब कुछ ही लोकशिक्षा के लिए है। उन्होंने अपने मुख से यह बात कही थी।"*

श्री म से एक भक्त ने पूछा, "अच्छा जी, ईश्वर-प्राप्ति ही जीवन का यदि उद्देश्य है, तो नाना विद्या सीखने की क्या आवश्यकता?"

श्री म कहने लगे, "हाँ, उन्हें निरन्तर पुकार सकें, तब तो और कुछ दरकार नहीं। किन्तु कितने लोग यह कर सकते हैं? इसीलिए नाना प्रकार

---

* श्री म दर्शन, दशम भाग, पृष्ठ 75-76

के काम हुए हैं। नाना कामों में विद्या प्राप्त करना बहुत अच्छा है। The period of study is the period of Brahmacharya— छात्र-जीवन ब्रह्मचर्य-पालन का समय है। विद्यार्जन में मन लगाने से अनेक झंझट अपने आप कट जाते हैं। सब कामों को 'उनका' जानकर करना चाहिए। उनमें फल समर्पण करके रुचि-अनुसार काम करे। उद्देश्य, किसी भी प्रकार उनकी प्राप्ति हो।

"लिखना, पढ़ना, सीखना various informations (नाना विषय) जानना, इन सब का ही प्रयोजन है। स्वामीजी (स्वामी विवेकानन्द) कितनी विद्याओं के ज्ञाता थे! कितना जानते थे! कितना पढ़े हुए थे! तभी तो विदेश में सब के साथ deal, व्यवहार कर सके थे। ईश्वर सब से एकसा कार्य नहीं करवाते। एक-एक से भिन्न-भिन्न काम लेते हैं। बहु-विषय जानने से बहुत लोगों के साथ deal, व्यवहार करना सहज हो जाता है। चैतन्यदेव थे व्याकरण, न्याय और वेदान्त के महापण्डित। इन सब का ही उन्होंने त्याग कर दिया। फिर इसी के द्वारा ही बड़े-बड़े पण्डितों को हरा दिया। *(एक भक्त के प्रति)* इसी कारण practice (वकालत) के लिए लॉ ठीक नहीं। लॉ जानने पर lawyers (वकीलों) के बीच भली प्रकार लॉ सम्बन्धी विचार कर सकता है। जिस विषय का स्वयं बिल्कुल ही ज्ञान न हो, तो विचार कैसे हो सकता है? भगवान के काम के लिए यह भी आवश्यक है। ठाकुर कहते थे ना बारम्बार, 'अपने प्राण तो नहरनी से भी लिए जा सकते हैं, परन्तु दूसरों के प्राण लेने के लिए है ढाल-तलवार दरकार।' Retrospective way— अतीत जीवन पर दृष्टि डालने से यह सब समझ में आ जाता है कि सब कुछ जानना है कितना आवश्यक।

"स्वामीजी कितना कुछ जानते थे— गाना, बजाना, कुश्ती, विभिन्न शास्त्र, विभिन्न भाषा, वक्तृता ज्ञान, साइन्स, कला, साहित्य, प्राच्य और पाश्चात्य दर्शन, रन्धन, इत्यादि कितना कुछ। वेदों में नाना विद्याओं के नाम हैं। नारद सर्व विद्या पारदर्शी थे— वेद विद्या, गन्धर्व विद्या, भूतत्त्व, नृतत्त्व, उद्भिदतत्त्व (जड़ी बूटी) न जाने और क्या-क्या। स्वामीजी भी सर्व विद्या सम्पन्न थे।

उनकी कोई भी विद्या नष्ट नहीं हुई। सब ही काम में आई।

''लौकिक विद्या के परे ही है ब्रह्मविद्या। ब्रह्मविद्या में मन यदि एकदम न जा पाए, तो लौकिक विद्या लाभ करना भला है।''*

— सन्दीप नांगिया

---

* श्री 'म' दर्शन, प्रथम भाग, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 25-26

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता (1915 – 2002)

- माँ सारदा के जन्मोत्सव पर सन् 1958 की प्रथम भेंट से ही स्वामी नित्यात्मानन्द जी की अन्तरंग शिष्या एवं उनके पश्चात् श्री म ट्रस्ट की आजीवन अध्यक्षा।
- स्वामीजी द्वारा रचित बंगला 'श्री म दर्शन' ग्रन्थमाला का प्रकाशन और उसका हिन्दी–अनुवाद तथा प्रकाशन।
- बंगला कथामृत का हिन्दी–अनुवाद तथा प्रकाशन।
- इनके पति प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा
  - – हिन्दी 'श्री म दर्शन' का 'M., the Apostle and the Evengelist' नाम से तथा
  - – हिन्दी कथामृत का 'Kathamrita' नाम से ही अंग्रेज़ी–अनुवाद और प्रकाशन।

■

2

Grammar of Life

When one looks back at last five decades or so of Didiji's (my mother, Smt. Ishwar Devi Gupta's) life, one gets an astounding view of her firm convictions on both Laukika Vidyaa (worldly education) and Brahmavidyaa (the true education). The basic premises, bases and structure (and therefore the outcomes) of the two are entirely different, yet her passion for each was equally strong and firm in her two different phases of life.

The years of the first phase of which I have direct or indirect knowledge were the years of 1950s. A classic example would be a hot afternoon of June of say 1953. At 1.45 pm. sharp she would start walking (actually her walk was more of a run) in the lane of our rented house in Ludhiana, the end of which led to a small unkept muddy path (often with dirty but stinking pools of mosquito infected water) which led to a small dilapidated gate of an enclosed colony. Following her was one of her own children – keeping pace with her by running at full pace (as if it was a run between the wickets). Once you reached the gate it had to be pushed hard – only then it would

open in a grudging manner with a groan, as if protesting why this puny woman followed by an ungainly child (with protruding teeth) was disturbing its afternoon siesta when the entire world was somnolent in the grueling heat. Once the gate was crossed, all one could see was a vast number of jhuggies struggling for space – roofs supported by bamboos with multicolored canvasses, and varied pieces of cloth/ tarpaulins etc. In each lived a family of those who eked out a bare and dismal living by carrying the refuse and *maila* of the rich and the privileged.

What was she doing at such a time and place? The best is to quote Raja Rao who in one of his delightful novels writes that the greatest gift that Gandhiji gave to the nation was that he created lakhs of small Gandhis in India. Here was an example driven by Gandhian ideology and resulting in a daily two hour school for teaching not only children of our most unfortunate brethren but also their wives (often battered by domestic violence and drunken bouts of poor husbands). The venue was a big round chabutra of mud under an ancient huge and verdant Neem tree which provided pristine shade and space. This area was kept spotless by the participants of the school. Two clean blackboards rested against the huge trunk of the tree – to accommodate the two classes. Actually a good part of the children's class was taken by her small child – all of 3 feet 6 inches, but not bad in small words and basic maths – whom she always addressed (during that period only) as Masterji. Such was her influence in the colony that it was well known that no man could misbehave with his spouse for fear that Didiji would tear him apart. She carried this on for many years.

Such was her belief and passion for education, that she herself pursued her F.A, B.A and M. A after her marriage only.

She saw to it that her five children (as also all difficult cousins who were sent to live and study with us by their harried parents) received best education and excelled in every field. It did not matter if a significant part of family earnings would go to support medical education and hostel expenses of the eldest daughter while the next one pursued her MA and the other children went to the best (and expensive) school. All must study, play, take part in extra-curricular activities and join educational trips. What if she and her educationist husband had to take up all kinds of extra work including invigilance duties at examinations in the remotest villages of Punjab where even the sturdy teachers from cities would not go. And she was truly proud and happy with the achievements of her wards – did not matter whether they were from the colony or whether they were her own brood.

In late fifties, she became quite ill. She was soon diagnosed as suffering from ulcerative colitis and a very tough period began with repeated hospitalization at Amritsar and Delhi. It was then that she realized that the rules of grammar surely would not come handy at the appointed time*. With repeated bouts of motions full of blood and ebbing strength, a realization came to her that if Thakur saved her life, it would be only for His work. Under Swami Nityatmanandaji's benign tutelage, started the complete and often mad pursuit of Brahmavidyaa (real knowledge). Her unending quest for this knowledge led her to learning not only a new language (Bengali) but really unlearning a lot of Laukika Vidyaa (worldly education) which she had gathered in the earlier part of her life. After all, the world of physical experience and inference – on which the worldly education is based – is grossly illusory. What is real is what does not change and

* 'Sampraapte Sannihite Kaale
Na Hi Na Hi Rakshati Dukrin-karne'.

remains eternal. Reality that exists outside the sensory perceptions is intelligible only to a pure soul which was eternal – it exists before birth and survives after body perishes. Man is thus nothing but made in the image of God.

To all who were within her speaking distance, she would give discourses. For others she decided to spread the word through the books.* This phase is well known to all those who were constantly around her. It would be indeed impertinence and inappropriate on my part to dwell upon this phase in greater detail. It would be like the child of the yore attempting to pontificate before a group of Ph.D. scholars – for so many of gurubhaktas are much more well-equipped to do so. Actually there always was a tinge of emotion in her that the "Masterji" of many decades ago did not graduate as effectively from Laukika Vidyaa to Brahmavidyaa, as she would have wished. But then she always said that this could happen only when He wishes.

Yet one may indulge a bit to raise a few questions. While it may not be so for the few blessed and realised souls, for majority of us, is it not necessary to equip ourselves with worldly knowledge – if only to survive, keep the body and soul together? Only then one is in a position to realize that sensory perceptions are indeed temporal and therefore the knowledge of Brahmavidyaa only will lead to the perfect bliss? Is that the Grammar of Life? Does the problem lie in our getting so submerged in the worldly pursuits that we just cannot take the next step?

— Dr. Kamal Gupta

---

* Translation, publication and distribution of Sri Ma Darshan and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita.

शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा शब्द का अंग्रेज़ी पर्याय है education. Education शब्द की व्युत्पत्ति Latin (लातिन) के शब्द 'Educere' से है। 'duco' का अर्थ है— 'to lead'— अर्थात् आगे बढ़ो। शिक्षा है वही वस्तु जिसके सहारे मनुष्य आगे बढ़ता है।

मनुष्य कौन है, इस विषय में ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते थे— मनुष्य माने 'मन-होश' अर्थात् जिसका मन होश में है, वह है मनुष्य।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है— प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो देवत्व है, उसे जगाती है शिक्षा।

शिक्षा शब्द का दो अर्थों में व्यवहार होता है— लौकिक व पारमार्थिक।

लौकिक शिक्षा अर्थात् अक्षर परिचय की शिक्षा अर्थात् साक्षरता। इसी शिक्षा से हमें ग्रन्थ-पाठ की क्षमता मिलती है। यह शिक्षा प्रारम्भ होती है अपने-अपने घर में शिक्षित अभिभावकों की सहायता से। इसी के साथ जुड़ी है विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय आदि की शिक्षा। इसे ही अंग्रेज़ी में कहते हैं— स्कूल, कॉलिज व युनिवर्सिटी की शिक्षा। कुछ अन्य शिक्षा-केन्द्रों से भी शिक्षा मिलती है जैसे— नाट्यशाला, थियेटर, सिनेमा, यात्रा, संगीत एवं नृत्यशाला से। प्रसिद्ध नाट्याचार्य श्री गिरीश घोष को ठाकुर ने नाटक लिखने व सिखाने से मना नहीं किया। बल्कि कहा— इससे तो लोकशिक्षा होती है।

—डॉ० प्रतिभा मजूमदार

नूपुर तेरे चरणों का

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता अपने गुरु स्वामी नित्यात्मानन्द के संग रहीं लगभग 16 वर्ष तक (सन् 1958 से 1975 तक)। इस सुदीर्घ काल में अपने गुरु के संग रहते-रहते उनकी मन:स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। महाराज जी से मिलने के लगभग पाँच वर्ष पश्चात् सन् 1963 में तो वे उन्मनी-सी रहने लगीं— हर समय जैसे इस जगत से दूर, कहीं और खोई हुई— भाव में। उन्हीं दिनों उन्होंने अनेक मनोभाव, विचार कविताबद्ध किए। उन द्वारा रचित यह गीत भी उन्हीं दिनों (16 मई, 1964) का है। तब वे बाह्य रूप से थीं उन्मादवत् पर भीतर से आनन्द ही आनन्द। वे यूँ रहतीं जैसे प्रतिपल हों वे माँ के संग, जैसे वे हों माँ के चरणों का नूपुर, दिन-रात 'माँ' के अंग-संग।

नूपुर तेरे चरणों का, मैं यदि बन पाऊँ माँ।
तेरे चरण की हर गति के संग-संग बज पाऊँ माँ॥

तेरे कदम की हर झंकार में, मन मेरा बज जाए माँ।
इसी तरह दिन-रात के संग से, भेद तुम्हारा पाऊँ माँ॥

तुम हो कौन, मैं हूँ कौन, खोज यदि पा जाऊँ माँ।
नूपुर-गति से दूर रहूँ तब, मौन गीत सुन पाऊँ माँ॥

—नूपुर-2012, पृष्ठ 63

3
श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की शिक्षा— निज का शत-प्रतिशत पालन

अपने 'सबको सम्मति दे भगवान' नामक लेख* में ठाकुर-परम्परा में शिक्षण स्वरूप का विश्लेषण करती हुईं श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता कहती हैं कि श्री म ने स्वामी नित्यात्मानन्द जैसे सैकड़ों संन्यासी तथा सहस्रों गृही व अन्य अनेक भक्तों को प्रमुखतया निम्नांकित चार तत्त्व सिखाए :—

(1) सुख-दु:खमय इस संसार में रहकर वेदवर्णित शान्तिमय जीवन-यापन।
(2) वन के वेदान्त को घर में लाकर गृहस्थ जीवन को वास्तविक आश्रम व्यवस्था के अनुरूप जीना।
(3) निष्काम तथा नि:स्वार्थ सेवाभाव का अभ्यास करना।
(4) भुवनमोहिनी माया के ऐश्वर्य में न भुलाने की प्रभु से निरन्तर प्रार्थना ।

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के जीवन में उपर्युक्त चारों तत्त्व मानो साकार हो गए थे, ऐसा प्रतीत होता है। शिक्षक के रूप में वे वाणी के साथ-साथ स्वयं के शत-प्रतिशत पालन, आचरण द्वारा भी अपनी बात सम्प्रेषित करती थीं। जैसे रामकृष्ण विचारधारा के प्रचार-प्रसार के दो प्रमुख स्तम्भ थे— एक तो सर्वत्यागी स्वामी विवेकानन्द तथा द्वितीय कथामृतकार आचार्य श्री म; ठीक वैसे ही उस रामकृष्ण भाव धारा को आचार्य श्री म के माध्यम से आगे

---

* नूपुर 1994, पृष्ठ 45

पल्लवित एवं विकसित करने वाले थे सर्वत्यागी संन्यासी के रूप में स्वामी नित्यात्मानन्द, और गृहस्थी भक्तों में अग्रणी उन्हीं की प्रधान शिष्या श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता।

आइए, उपर्युक्त चारों तत्त्वों के श्रीमती ईश्वरदेवी के जीवन में साक्षात् अवतरण का किञ्चित् अवलोकन करें :—

उपर्युक्त प्रथम तत्त्व को जीवन में उतारने के निमित्त उन्होंने ठाकुर के तीन मन्त्रों का पालन किया— उदारदृष्टि, विषदंश मुक्त फुंकार और दूर से नमस्कार। सुख-दु:खमय इस संसार में रहते हुए भी उन्होंने शान्तिमय जीवन-यापन का यह सन्धान पा लिया और जगद्धित की कामना से अपना अनुभव इस प्रकार रखा :—

> ''कुछ लोग ऐसे होते हैं जो तुम्हारे मार्ग में बाधा तो देते हैं, पर तुम्हारी हानि नहीं करते। ऐसे लोगों के प्रति 'उदार' रहो। प्यार से समझा-बुझा कर उन्हें शान्त कर दो। फिर कुछ ऐसे मिलेंगे जो समझाने-बुझाने से भी तुम्हारे मार्ग में बाधा देंगे। उनके प्रति चाहिए 'फुंकार' यानि उन्हें डराना, धमकाना, तेज दिखाकर उन्हें दूर झटक देना, पर विष नहीं छोड़ना अर्थात् उनका अहित नहीं करना।* एक इस प्रकार के भी होते हैं जो किसी तरह भी मानते नहीं, उनके लिए ठाकुर ने कहा है— 'दूर से नमस्कार' अर्थात् ऐसे लोगों के साथ किसी प्रकार का भी तर्क नहीं, बस उन्हें दूर से नमस्कार, उनकी बात की ओर ध्यान नहीं देना यानि उनके प्रति उपेक्षा-भाव।''**

अत: निस्सन्देह रूप से कहा जा सकता है कि श्रीमती ईश्वरदेवी जी ने अपने आचरण द्वारा ठाकुर के उक्त मन्त्रों के पालन करने की शिक्षा दी है ताकि संसार में सभी कार्य करते हुए भी व्यक्ति आनन्द से रह सके।

उपर्युक्त द्वितीय तत्त्व की शिक्षा भी उन्होंने उपदेशों के माध्यम से न दे

---

* नूपुर, 1999, पृष्ठ 13

** श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, भाग एक, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 35 द्रष्टव्य।

करके अपनी जीवनशैली द्वारा दर्शायी। उनके जीवन के अन्तिम सैंतीस वर्षों में मैंने देखा है कि उन्होंने वन के वेदान्त को घर में लाकर तदनुरूप जीवन जीया था। उनके संगी-सम्बन्धी जनों ने यही अनुभव किया है। कई जन तो उनके पास उनके यहाँ यह सोचकर जाने से बचते थे कि वहाँ जाकर तो बस एक ठाकुर चर्चा ही सुनने को मिलेगी या फिर एक ही सेवाकार्य का आग्रह किया जाएगा कि किस प्रकार श्री 'म' दर्शन का प्रचार-प्रसार हो अथवा किस प्रकार श्री म ट्रस्ट पल्लवित, विकसित एवं पुष्पित हो। ऐसा था उनका पालन! पालन में वे निज के प्रति भी कठोर ही रहतीं।

उपर्युक्त तृतीय तत्त्व तो मानो उनके जीवन में उतरकर सभी सम्पर्क में आने वालों को यही शिक्षा दे रहा था कि हे जीवो, निष्काम कर्म के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है शान्तिमय जीवन-यापन करने का। उनका सरल, अनाडम्बर, आसक्ति रहित जीवन मानो यही शिक्षा देता है कि निःस्वार्थ सेवाभाव द्वारा व्यक्ति असम्भव को भी सम्भव कर सकता है और आध्यात्मिक मार्ग की उच्चतम उपलब्धियों को पा सकता है। अन्यथा एक रुग्ण शरीर लेकर भी, नारी रूप में पाँच सन्तानों की जननी होते हुए भी, पारिवारिक सभी दायित्वों का सफल निर्वहन करते हुए भी बंगला, हिन्दी तथा अंग्रेज़ी श्री म दर्शन का प्रकाशन कर पातीं? वे सचमुच विलक्षण थीं।

उपर्युक्त चतुर्थ तत्त्व की शिक्षा भी उन्होंने प्रातः एवं सन्ध्याकालीन आरती के समय नित्य एवं नियमित रूप से की जाने वाली प्रार्थना से दी— "और प्रभु ऐसी कृपा करना कि मैं आपकी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ।" उनके सम्पर्क में आने वाले अनेक भक्तों ने वर्ष 1965 से देखा है कि वे जहाँ भी रहीं, सन्ध्यारती उनकी दैनिकचर्या का अपरिहार्य तथा नियमित अंग रहा। प्रायः सवा-डेढ़ घण्टे का यह एक निश्चित समय पर किया जाने वाला अनुष्ठान नित्य पालित हुआ जिसमें

श्री श्रीठाकुर की आरती 'खण्डन-भव-बन्धन' तथा 'ॐ ह्री ऋतं' स्तव-गायन के साथ-साथ कथामृत तथा श्री 'म' दर्शन के पाठ के तुरन्त बाद उनके द्वारा रची गई 'सबका भला करो भगवान' नामक सर्वमङ्गलमय कल्याण-प्रार्थना नियमित रूप से की जाती थी। इस प्रार्थना का तन्मयता से पाठ/गायन करने वाला ईश्वर-अनुरागी जन अनुभव कर सकता है कि लेखिका ईश्वरदेवी आन्तरिक प्रार्थना के महत्त्व को भली प्रकार जानती थीं और वे इसे शिक्षण शैली में उपयुक्त स्थान दिए जाने की पक्षधर थीं।

श्रीमती ईश्वरदेवी जी के देहावसान से कुछ महीने पूर्व रविवार, अगस्त 19, 2001 के दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़ में छपे तथा गीताञ्जलि जी द्वारा लिखित 'At Home with Spirituality' नामक लेख में उनके विषय में कितना सही उपसंहार प्रस्तुत किया गया है :—

"By serving God in the role allotted to her— that of a householder— this octogenarian has paid a befitting tribute to her spiritual masters, who professed that one could serve and reach Him without living the life of a hermit in a forest. She has truly lived upto the teachings of Ramakrishna, whose advice to householders was : Let the boat be in water, but let there be no water in the boat, let an aspirant live in the world, but let there be no worldliness in him."*

स्वामी नित्यात्मानन्द जी के एक अन्यतम अन्तरंग शिष्य तथा आकाशवाणी के डिप्टी डायरैक्टर जनरल के पद से सेवानिवृत्त पद्मश्री दिलीप कुमार सेनगुप्त उनका कितना सही आकलन करते हैं :—

"One wishes to say that of all the fruits borne by the tree of the body of respected Jagabandhu Maharaj, the best fruit is Smt. Ishwar Devi Gupta. Those that Swami ji

---

* नूपुर 2005, पृष्ठ 23

> has breastfed for a very long time, if we call them his only devotees or disciples, then at any given time he had at least twenty-five devotees, 'recorded' devotees. Out of these, Ishwar Devi Gupta is the best."*

सेनगुप्त जी के साथ-साथ स्वामी नित्यात्मानन्द जी के अन्य शिष्य-भक्तों का भी यही मानना रहा।

— डॉ० नौबतराम भारद्वाज

* नुपूर 2003, पृष्ठ 22

स्वामी नित्यात्मानन्द जी

- जन्म का नाम : जगबन्धु राय।
- जन्म : गंगा दशहरा, सन् 1893 (मामा श्री भैरवराय और श्री गोबिन्दराय के घर)
- स्थान : पूर्वी बंगाल (बंगला देश) के मैमनसिंह ज़िले का कोठियादि नाम का कस्बा
- शिक्षा : लॉ तक। लॉ करते–करते श्री म के पास जाने लगे। श्री म कथित ठाकुर की बातें डायरी में लिखने लगे।
- दीक्षा : स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) जी से दीक्षित।
- ऋषिकेश–वास : सन् 1938 से ऋषिकेश में वास और 'श्री म दर्शन' महाग्रन्थ–माला का लेखन और प्रैस कॉपी की तैयारी।
- सन् 1958 में श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता से भेंट। शेष जीवन प्रायः उन्हीं के वास स्थान को निज आश्रम बनाए रखा। उनकी–सेवा सहायता से श्री म दर्शन का मुद्रण–प्रकाशन आरम्भ। रोहतक में सन् 1967 में श्री म ट्रस्ट की स्थापना।
- महासमाधि : 12 जुलाई, सन् 1975 को # 579/18–बी, चण्डीगढ़ में।

■

4

शिक्षकरूपे स्वामी नित्यात्मानन्द जी

स्वामी नित्यात्मानन्द जी की समस्त शिक्षा–दीक्षा वर्ष 1923 ईसवी से प्राय: एक दशाब्दी पर्यन्त पूज्यपाद श्री म के संग अहर्निश वास करते हुए ही हुई। क्योंकि कथामृतकार आचार्य श्री म स्वयं श्री श्रीरामकृष्ण के अन्यतम अन्तरङ्ग पार्षद थे और आजीवन शिक्षा जगत् से जुड़े रहे, इसीलिए स्वाभाविक था कि श्री म के सान्निध्य में वास करते हुए स्वामी जी उनके बहुमुखी व्यक्तित्व के आचार्यत्व के रंग में रंग गए। उनके कृपाश्रय में रहते समय श्री म की इच्छानुसार ही उन्होंने मॉर्टन स्कूल में अध्यापन कार्य ग्रहण किया और उनके पथप्रदर्शन में शिक्षण सम्बन्धी पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त किया और एक अनुभवी कौशल सम्पन्न अध्यापक के रूप में 16 मार्च, 1930 ईसवी को उन्होंने बेलुड़ मठ से देवघर विद्यापीठ के लिए प्रस्थान किया।

साधु–परित्राण तथा धर्मसंस्थापन के अतिरिक्त रामकृष्ण अवतार आगमन का प्रमुख उद्देश्य था वन का वेदान्त घर में लाना। सम्भवत: इसी कारण उनकी तपस्याएँ तपोभूमि हिमालय में न होकर लोकालय–देवालय में ही हुईं। यही परम्परा आचार्य श्री म के जीवन से अनुस्यूत होकर जगबन्धु महाराज के जीवन में भी दृष्टिगोचर हुई। श्री श्रीरामकृष्ण देव की अन्तिम पार्षद सन्तान स्वामी विज्ञानानन्द जी (श्री हरि प्रसन्न महाराज)के 1938 में रामकृष्ण–लोक–गमन करने पर वे श्रीरामकृष्ण मठ तथा मिशन का परित्याग करके

पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, कश्मीर आदि प्रदेशों में सर्वोत्तम शिक्षादान में व्रती रहे। श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्तावत् जिन-जिन भक्त-साधक-जिज्ञासुओं ने शिक्षाव्रती जगबन्धु महाराज का संग-स्नेह-शासन पाया, उन्होंने अनुभव किया कि वे श्रीमवत् अपने नि:स्वार्थ स्नेह से जीवों को अज्ञानान्धकार से ज्ञान-भक्ति के सुमधुर आनन्द-धाम में ले जा रहे हैं।

शिक्षक के रूप में उनकी शिक्षा सम्बन्धी अवधारणाओं का विश्लेषण निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है :—

> स्वामी नित्यात्मानन्द जी एक बहुआयामी प्रतिभा के स्वामी थे। शिक्षक के रूप में उनकी मान्यताएँ समग्र श्री 'म' दर्शन में अनुस्यूत हैं। अतः उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचारों एवं प्रयोगों से परिचय पाने के लिए हमें श्री 'म' दर्शन में प्राप्त कुछेक उल्लेखों का आश्रय लेने के साथ-साथ उनके द्वारा साधक-भक्तों को लिखे कुछेक पत्रों की ओर भी ध्यान देना होगा :—
>
> > "Not that Thakur's teaching percolated through Swami Nityatmananda in his physical presence only, but he would make his disciples follow practical Vedanta, while he was away through letter as well. How a bhakta could scale more heights of practical spirituality was Swami Nityatmananda's main concern all the time"*

मिहिजाम खण्ड में जगबन्धु महाराज 'सरल शिक्षण-पद्धति' विषय को लेकर आचार्य श्री म के समक्ष बालकवत् अपनी मान्यता को रखते हैं। श्री म उन्हें कह रहे हैं, "इन सब रास्तों द्वारा ही लोगों ने उन्हें जाना है। एक चुन लेना चाहिए, अपनी रुचि के अनुसार। फिर उसे ही लेकर पड़ा रहे। सन्तान-भाव तो अच्छा है, क्या कहते हो— पिता और पुत्र?" इस पर जगबन्धु महाराज

* नूपुर, 2000; पृष्ठ 64; पृष्ठ 65 से 71

सद्य उत्तर देते हैं— जी हाँ, मुझे यह अच्छा लगता है।* निःस्संदेह, इस प्रकार के दृष्टिकोण से ज्ञानार्जन अनायास ही हो जाता है। अतः ज्ञान-लाभ की सरलतम विधि को पाठकों के समक्ष रखते हुए आचार्य जगबन्धु जनमानस को यही सन्देश दे रहे हैं कि भारतीय गुरु-शिष्य-परम्परा द्वारा आज भी एक जिज्ञासु अधिकारी यथेष्ट ज्ञानार्जन कर सकता है। यह आवश्यक भी है क्योंकि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' और 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।'

इसी प्रसङ्ग में जगबन्धु महाराज की एक अन्य घटना भी उल्लेख्य है। श्री म के साथ मिहिजाम में वास करते समय आश्रमवासियों के प्रयोग के लिए खूब गहरे कुएँ से पानी खींचने का दायित्व बलिष्ठ होने के कारण जगबन्धु महाराज पर था। श्री म ने उन्हें लम्बे-खम्बे की सहायता से भक्तों के स्नानार्थ अनेक समय तक प्रचुर जल निकालते देखा। आचार्य श्री म ने भक्ति के साथ-साथ विचार-शक्ति का महत्त्व भी समझा दिया और कहा, ''जल बहुत अधिक खर्च हो रहा है। कोई भी द्रव्य अपव्यय करना उचित नहीं।... जितने के न होने से सरता नहीं, उतना ही लेना।... तभी धर्मजीवन होता है सुगठित।'' जगबन्धु महाराज मन ही मन सोचने लगे, स्कूल कॉलिज में तो ऐसा शिक्षक कभी भी मिला नहीं। माँ की तरह यत्न करके किस प्रकार शिक्षा दे रहे हैं! तभी वे इसका कारण भी जान गए— गुरु हैं अहेतुक कृपासिन्धु।**

गृहस्थाश्रमियों की व्यावहारिक शिक्षा के लिए उन्होंने सोलन (हिमाचल प्रदेश) में वर्ष 1970, 1971, 1972 और 1973 में चार चतुर्मासीय कैम्प-आश्रमों का आयोजन किया जहाँ साधकों, जिज्ञासुओं को आध्यात्मिक जगत् की व्यावहारिक शिक्षा से अवगत कराया गया। इस प्रकार उन्होंने श्री 'म' दर्शन प्रथम भाग के मिहिजाम खण्ड का अतीव संक्षिप्त शैक्षणिक स्वरूप प्रदान किया जिसे श्रीमती ईश्वरदेवी ने निम्न रूप से व्यक्त किया :—

> ''ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने श्री म को हफ्तों, महीनों, वर्षों रात-दिन संग रखकर प्रायः साढ़े चार वर्ष सार्वभौमिक धर्म की व्यावहारिक शिक्षा दी।... स्वामी नित्यात्मानन्द जी ने अन्य सैंकड़ों और सहस्रों गृहस्थियों

---

* श्री 'म' दर्शन, प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 160

** श्री म दर्शन, प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 273-74

के संग श्री म का सान्निध्य प्राप्त किया प्राय: बीस वर्ष। वह भी श्री म की भान्ति यथासाध्य पवित्र जीवन यापन और सेवाव्रत का अनुष्ठान अपने भक्तों से कराया करते— अनाडम्बर सरल जीवन।''*

श्रीरामकृष्ण मठ तथा मिशन के स्वामी वन्दनानन्द जी शिक्षक रूप में जगबन्धु महाराज के विषय में 13 जून, 1994 को बेलूड़ मठ से लिखते हैं :—

''स्वामी नित्यात्मानन्द जी कुशल तथा सरस अध्यापक थे— वे ऐसे आचार्य थे जो युवा ब्रह्मचारियों और भक्तों को आत्मज्ञान के शिक्षण तथा उसके अभ्यास का प्रशिक्षण देने में सक्षम थे। जब हमने उनसे प्रतिदिन पढ़ने की इच्छा व्यक्त की तो वे प्रसन्नतापूर्वक मान गए और उन्होंने मुझे तथा मेरे अन्य साथियों को कथामृत, संक्षिप्त उपनिषद् तथा नारद और शाण्डिल्य के भक्तिसूत्र नियमित रूप से पढ़ाए। मुझे कनखल सेवाश्रम में दिसम्बर सन् 1937 से फरवरी 1938 तक लगभग तीन महीने उनके मधुर व्यवहार तथा विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन में अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इससे मुझे बहुत लाभ हुआ। पुस्तकें पढ़कर हमें जो मिलता, उससे कहीं अधिक ज्ञान हमें उनसे मिला : साधु तथा साधक के दैनिक जीवन में आत्मज्ञान की मूलभूत अनिवार्य बातें तथा उनका अभ्यास, त्याग-सेवा-अनुशासन संयुक्त जीवन।''**

श्री 'म' ट्रस्ट के संस्थापक-सचिव श्री धर्मपाल गुप्त जीवन भर स्वयं एक शिक्षक होने के कारण जगबन्धु महाराज से प्रथम भेंट के उपरान्त उनकी शिक्षक के रूप में छवि इस प्रकार अंकित करते हैं :—

"From his looks and talk I immediately felt that Swamiji was not one of those monks one frequently comes across on the road or even in a holy place. His words were chiselled as of a seasoned literary person without the

---

* नूपुर, 1995, पृष्ठ 45-46

** नूपुर 1997, पृष्ठ 61-62

hotch potch of mysticism or intellectual arrogance.''*

शिक्षक के रूप में महाराज का 'पापा जी' (श्री धर्मपाल गुप्त) को जब पहला उपदेश मिला— ''जैसे तुम अपने सांसारिक तथा बौद्धिक जगत् का पालन-पोषण करते हो वैसे ही अपने आध्यात्मिक जगत् का भी तो ध्यान रखो।''— तो उन्होंने पूछा— ''कैसे?'' इस पर महाराज ने उन्हें ''गॉस्पल ऑफ श्रीरामकृष्ण'' से श्री म की ठाकुर के साथ प्रथम चार मुलाकातें पढ़ने का परामर्श दिया। आध्यात्मिक गुरु के रूप में उपयुक्त अधिकारी को परखने के लिए ही सम्भवतः उन्होंने यह परामर्श दिया। यह तो फिर एक इतिहास है कि 'पापा जी' को 'जहाँ चाह वहाँ राह' के सिद्धान्तानुसार गॉस्पल की एक प्रति दो दिन बाद ही मिल गई और वे परवर्ती जीवन में आध्यात्मिक मार्ग पर आगे ही आगे बढ़ते चले गए।

स्वामी नित्यात्मानन्द जी के एक अन्तरंग शिष्य तथा आकाशवाणी के डिप्टी डायरैक्टर जनरल के पद से सेवानिवृत्त पद्मश्री दिलीप कुमार सेनगुप्त अपनी पुस्तक 'गुरु प्रणाम' में लिखते हैं :—

> ''Always and everywhere, I have experienced the grace of the Guru, Swami Nityatmananda, who is the bee on the flower that is Sri Ramakrishna and is an apostle of M. If we call M. the Vyasa Dev of Ramakrishna, then Gurudev must be called Shukadeva, the son of Vyasa, since he is the author of Sri Ma Darshan, the commentary to the Kathamitra.''**

स्वामी नित्यात्मानन्द जी की देहली-निवासिनी सेविका सन्तान श्रीमती पद्मा गाडी अपने संस्मरणों में लिखती हैं :—

''स्वामी जी सदा व्यक्ति की प्रकृति देखकर ही उसे काम करने को

---

* नूपुर, 1997, पृष्ठ 64

** नूपुर 2003, पृष्ठ 89

कहा करते।... वे जानते थे किस व्यक्ति को किस काम के लिए कहना है और कब।''* श्री श्री ठाकुर की जगबन्धु महाराज को दी हुई इस अलौकिक शैक्षणिक दृष्टि का प्रमाण है इनका जालन्धर से 14 जनवरी, 1960 का 'मम्मी जी' का तथा पापा जी को संयुक्त रूप से लिखा प्रथम पत्र :—

> ''When mother punishes us, it is all for our good. Because she is all-good. But we can't understand it at once. We humbly pray to Her, may She give us strength to forebear this trial. Surely this will lift your mind to majestic height— to God's Blessed Feet.''

1924-25 में मॉर्टन स्कूल के दसवीं कक्षा के छात्र रहे श्री महिमा रन्जन भट्टाचार्य जगबन्धु महाराज को शिक्षक के रूप में स्मरण करते हुए लिखते हैं :—

> ''जगबन्धु महाराज हमें भारत का इतिहास पढ़ाते थे। वे विद्यार्थियों में assiduous विद्वान के रूप में जाने जाते थे जो साधारण युवा छात्रों की समझ से बाहर के विषयों को भी सरल भाषा द्वारा हृदयङ्गम करवा देते थे। वे पितृवत् अपने छात्रों के चिन्तन, दिशा, बोध को ऊर्ध्वमुखी करके दिव्यालोक में अवस्थित कर देते थे।''**

— डॉ० नौबतराम भारद्वाज

---

* नूपुर 1998, पृष्ठ 89

** नूपुर 1998, पृष्ठ 12-13

प्रधान कार्य है ईश्वर को जना देना

तुम जब समझते हो कि सर्वभूतों में वे हैं— उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है— संसार, स्वदेश उनके बिना नहीं है। भगवान के साक्षात्कार के बाद देखोगे वे ही परिपूर्ण हुए रह रहे हैं। ऋषि वशिष्ठदेव ने रामचन्द्र से कहा था, 'राम, तुम जो संसार-त्याग करोगे कहते हो, मेरे साथ विचार करो; यदि ईश्वर इस संसार के बिना हों तब ही तो त्याग करना'। रामचन्द्र ने आत्मा का साक्षात्कार किया हुआ था, इसीलिए चुप रहे।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कहते, ''छुरी का व्यवहार (इस्तेमाल) जानकर छुरी हाथ में लो।'' स्वामी विवेकानन्द ने दिखाया कि यथार्थ कर्मयोगी किसे कहते हैं। देश का क्या उपकार करोगे? स्वामीजी जानते थे कि देश के गरीबों को धन देकर सहायता करने की अपेक्षा और अनेक महत् कार्य हैं। ईश्वर को जना देना प्रधान कार्य है। उसके बाद है विद्यादान; उसके परे जीवनदान; उसके परे अन्न-वस्त्र दान।

—श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत, भाग पाँच, 2011, पृष्ठ 263-64

स्वामी विवेकानन्द

- घर का नाम : नरेन्द्रनाथ दत्त।
- जन्म : 12 जनवरी, सन् 1863 ईसवी।
- स्थान : सिमला मुहल्ला, कोलकता।
- माता–पिता : श्रीमती भुवनेश्वरी देवी और विश्वनाथ दत्त।
- शिक्षा : बी.ए. दर्शनशास्त्र में विशेष रुचि।
- गुरु : श्रीरामकृष्ण परमहंस।
- बेलूड़ मठ की स्थापना : फरवरी, 1898 ईसवी।
- महासमाधि : 4 जुलाई, 1902 ईसवी।

■

5

Swami Vivekananda
on
Education

As a student in modern India in the nineteen eighties and nineties (1980-1990s), I studied various subjects like Science, Mathematics, History, Geography, Civics, Languages like English, Hindi and Punjabi in school and college. However, I was never taught about any of our great scriptures nor was I taught about any spiritual disciplines like controlling and concentrating the mind. By not knowing the knowledge given in scriptures and not knowing means on how to acquire and develop this spiritual knowledge leaves one with very little knowledge of the world which does not enable us to lead a life of confidence and peace. Nor does this little knowledge of the world bereft of spiritual knowledge enables us to do bigger tasks or be successful on a global scale.Most of the educators and leaders seem to be influenced so much by Western education system that Indian philosophy, scriptural knowledge, practices that make a person develop higher potential by coming in touch with the Divine, appear to them as old fashioned or living in the past.It is really an irony that despite being born in a country with a history of inculcating spiritual culture and values, the modern education system completely ignores these important aspects.

Swami Vivekananda ji discussed about the prevailing

system of education in India and the changes required in order to develop one's faculties to enable one to stand on one's own feet and face the challenges of life. Swamiji emphasized a great deal about learning the scriptures and developing spiritual knowledge combined with Western knowledge of science.

Here are some excerpts from Swamiji's Complete Works which speak of his views on education :—

Definition of education

Swamiji says :

"By education I do not mean the present system, but something in the line of positive teaching. Mere book-learning won't do. We want that education by which character is formed, strength of mind is increased, the intellect is expanded, and by which one can stand on one's own feet."

—Vol. V, Ch. IV

"What is education? Is it book-learning? No. Is it diverse knowledge? Not even that. The training by which the current and expression of will are brought under control and become fruitful is called education. Now consider, is that education as a result of which the will, being continuously choked by force through generations, is well-nigh killed out; is that education under whose sway even the old idea, let alone the new ones, are disappearing one by one; is that education which is slowly making man a machine?"

—CW. 4.490

"Education is the manifestation of the perfection already in man."

—CW. 4.358

“Knowledge is inherent in man. No knowledge comes from outside; it is all inside. What we say a man 'knows', should, in strict psychological language, be what he 'discovers' or 'unveils'; what a man 'learns' is really what he 'discovers', by taking the cover off his own soul, which is a mine of infinite knowledge.”

—CW. 4.490

“Education is not the amount of information that is put into your brain and runs riot there, undigested, all your life. We must have life-building, man-making, character-making as simulation of ideas. If you have assimilated five ideas and made them your life and character, you have more education than any man who has got by heart a whole library. …If education is identical with information, the libraries are the greatest sages in the world, and encyclopaedias are the rishis.”

—CW. 3.302

Modern education

“The education that you are getting now has some good points, but it has a tremendous disadvantage which is so great that the good things are all weighed down. In the first place it is not a man-making education, it is merely and entirely a negative education. A negative education or any training that is based on negation is worse than death.”

—CW. 3.301

“Does higher education mean mere study of material sciences and turning out things of everyday use by machinery? The use of higher education is to find out how to solve problems

of life, and this is what is engaging the profound thought of the modern civilized world, but it was solved in our country thousands of years ago.''

''All the soul-elevating ideas and the different branches of knowledge that exist in the world are found on proper investigation to have their roots in India.''

''What we need, you know, is to study, independent of foreign control, different branches of the knowledge that is our own, and with it the English language and Western science; we need technical education and all else may develop industries to that men, instead of seeking for service, may earn enough to provide for themselves, and save something against a rainy day.''

—Vol. 5, Ch. IX

Ancient education

''India had all good prospects so long as Tyagis (men of renunciation) used to impart knowledge. India will have to carry others' shoes for ever on her head if the charge of imparting knowledge to her sons does not again fall upon the shoulders of Tyagis.''

''Why should Sri Ramakrishna come down to this earth, and why should he discourage mere book-learning so much? That new life-force which he brought with him has to be instilled into learning and education, and then the real work will be done.''

—Vol. 5, Ch. IX

''We must have a hold on the spiritual and secular education of the nation. ...You must dream it, you must talk it, you

must think it, and you must work it out. Till then there is no salvation for the race.''

— CW. 3.301

Women education

''It is only in the homes of educated and pious mothers that great men are born. And you have reduced your women to something like manufacturing machines; alas, for heaven's sake, is this the outcome of your education? The uplift of the women, the awakening of the masses must come first, and then only can any real good come about for the country, for India.''

— CW. 6.489-90

''I ask you all so earnestly to do likewise and open girls' schools in every village and try to uplift them. If the women are raised, then their children will be their noble actions glorify the name of the country- then will culture, knowledge, power, and devotion awaken in the land.''

— CW. 7.220

Education for the masses

''What we need, you know, is to study, independent of foreign control, different branches of the knowledge that is our own, and with it the English language and Western science; we need technical education and all else that may develop industries so that men, instead of seeking for service, may earn enough to provide for themselves, and save something against a rainy day.''

— CW. 5.368-9

“Our part of the duty lies in imparting true education to all men and women in society. As an outcome of that education, they will of themselves be able to know what is good for them and what is bad, and will spontaneously eschew the latter. It will not be then necessary to pull down or set up anything in society by coercion.”

— CW. 6.493

Qualities of a teacher

“The only true teacher is he who can immediately come down to the level of the student, and transfer his soul to the student’s soul and see through the student’s eyes and hear through his ears and understand through his mind. Such a teacher can really teach and none else.”

— Vol. 4, p. 183

“No one can teach anybody. The teacher spoils everything by thinking that he is teaching. Thus Vedanta says that within every man is all knowledge – even in a boy it is so – and it requires only an awakening, and that much is the work of a teacher. We have to do only so much for the boys that they may learn to apply their own intellect to the proper use of their hands, legs, ears, eyes, etc. and finally everything will become easy.”

— Sunil Bansal

माँ सारदा के साथ एक भक्त का संवाद

भक्त—माँ, यह जो ठाकुरजी को सब कहते हैं— पूर्णब्रह्म सनातन, तुम्हारी क्या राय है ?

माँ— हाँ, वे मेरे लिए तो हैं पूर्णब्रह्म सनातन।

भक्त—माँ, सबके लिए, प्रत्येक स्त्री का स्वामी ही है पूर्णब्रह्म सनातन। मैंने उसी हिसाब से नहीं कहा।

माँ—हाँ, वे हैं पूर्णब्रह्म सनातन। पति-भाव से भी और वैसे भी।

तब मैंने सोचा यदि वे हैं पूर्णब्रह्म सनातन, तब तो माँ हैं स्वयं जगदम्बा— जैसे सीता-राम, राधा-कृष्ण, परस्पर अभिन्न। मैं तो इसी विश्वास से ही माँ से मिलने गया था। साधारण स्त्री— बैठकर रोटी बना रही हो, यह सब क्या ? माया, न क्या !''

माँ— जरूर, यह तो माया ही है। फिर तब मेरी यह दशा क्यों ? मैं तो बैकुण्ठ में नारायणजी के पास लक्ष्मी होकर रहती थी।

यह कहकर फिर कहा, ''ईश्वर नरलीला करना पसन्द करते हैं कि ना ! श्रीकृष्ण ग्वाला के बेटे थे, राम राजा दशरथ का बेटा।''

भक्त—आपको अपना स्वरूप याद होता है क्या ?

माँ— हाँ, कभी-कभी याद होता ही है। तब सोचती हूँ, मैं यह सब क्या कर रही हूँ, क्या कर रही हूँ ! फिर यह सब घर, बेटा (हाथ से इशारे से सामने सब दिखाकर) याद आए तो सब भूल जाती हूँ।

—श्री श्रीमायेरकथा (अखण्ड) पृ०170

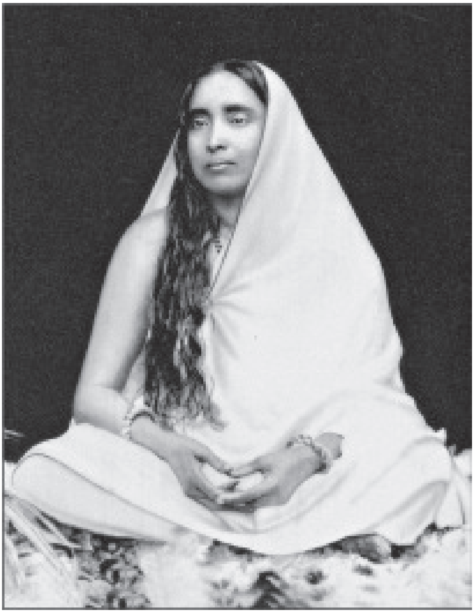

माँ सारदा

- जन्म : 22 दिसम्बर, सन् 1853 ईसवी।
- स्थान : जयराम बाटी (कामारपुकुर से 4 मील और दक्षिणेश्वर से 60 मील)
- माता–पिता : श्रीमती श्यामा सुन्दरी और श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय।
- भाई–बहन : चार छोटे भाइयों की बहन।
- विवाह : 6–7 वर्ष की अल्पायु में सन् 1859 में 22–23 वर्षीय ठाकुर रामकृष्ण के साथ।
- दक्षिणेश्वर–वास : प्रथम बार सन् 1872 में गंगा–स्नान के लिए जा रहे यात्री–दल के साथ 60 मील पैदल चल कर दक्षिणेश्वर पहुँचीं। बाद में वे आवश्यकतानुसार कभी दक्षिणेश्वर, कभी जयराम बाटी रहती रहीं। ठाकुर के देहावसान के पश्चात् वे प्रायः कोलकता रहा करतीं।
- महासमाधि : कोलकता में 21 जुलाई, सन् 1920 ईसवी को रात्रि डेढ़ बजे।

■

6

माँ सारदा की शिक्षा/सीख

जन्म लेने के बाद बच्चे का परिचय/सम्बन्ध सर्वप्रथम माँ से ही होता है। माँ ही होती है बच्चे की प्रथम गुरु। अमृतरूपी मातृदुग्ध पीकर और माँ का प्यार लेकर ही शिशु का जीवन शुरु होता है। आगे भविष्य में वह जो भी बनता है, उसकी भूमि माँ से ही बनती है।

क्या भला है, क्या बुरा— वह सब माँ ही सिखाती है। ठीक ऐसे ही माँ सारदा ने सबको प्यार का पीयूष पिला कर जो भूमि तैयार कर दी थी, उसी पर ठाकुर ने आध्यात्मिकता के बीज बो दिए, तब मनुष्यत्व का विकास हुआ और साधु तैयार हुए।

ठाकुर के पास कोई भी आता, उसे पहले वे माँ के पास भेज देते। जैसे लाटु महाराज उनके उपदेश से सदा माँ के सारे कामों में हाथ बँटाते थे। माँ के पास आने से सभी को रहन-सहन और कर्त्तव्य की शिक्षा माँ से मिल जाती, जैसे घर में किस तरह से रहना होता है, सबके साथ कैसा व्यवहार करना उचित है, पड़ोसियों के साथ मिलजुल कर कैसे रहना है, घर की वस्तुएँ ठीक जगह पर सजा के रखना ताकि अंधेरे में भी वे आसानी से मिल जाएँ। माँ कहतीं, 'जिसको रखे, वही रखे'।

झाड़ू को भी ठीक जगह पर रखें, उसकी जरूरत फिर भी तो पड़ेगी।

कुछ चीज नष्ट न करो। अपचय (waste) न करो। अपचय अभाव का कारण होता है। गृहस्थियों से कहतीं— सामान्य बचत करनी चाहिए ताकि असमय में काम आ सके। जैसे चींटियाँ वर्षा या सर्दी के मौसम के लिए खाना जमा करती हैं। भोजन सदा ही भगवान को अर्पित करके करना चाहिए।

रोज थोड़ा-सा खाना गाय, कुत्ते, बिल्ली आदि के लिए रख देना चाहिए। जिसका जो खाना, उसको वही देना उचित। माँ कहतीं— सबको अपना समझो, कोई पराया नहीं। किसी में दोष न देखना। ऐसा न करने से मन नीचे गिर जाता है। सभी का शुभ चिन्तन जरूरी है।

माँ थीं अद्‌भुत प्रेममयी, स्नेहमयी। सभी सोचते थे, माँ मुझे सबसे अधिक प्यार करती हैं। वे संसार के प्रति पूर्ण कर्त्तव्य परायणा थीं। जिनके साथ जैसा व्यवहार करना उचित है, वैसा ही करतीं। वे बाल-विवाह के पक्ष में नहीं थीं।

एक समय था जब समाज नारी प्रधान था— उस समय भारत की महीयसी नारियाँ जैसे गार्गी, मैत्रेयी और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई प्रमुख तेजस्विनी नारियाँ थीं। इसी समय के बाद आया एक अंधकारमय युग, जब समाज हो गया पुरुष प्रधान। नारी मर्यादा भू-लुण्ठित हो गई। समाज में अशिक्षा, कुसंस्कार फैल गए। तब नारी हो गई— 'पुत्रार्थे क्रियते भार्या'। पुरुष अपने स्वार्थ के लिए सहमरण, बाल्यविवाह, विधवा के प्रति अत्याचार आदि अनाचार का समर्थन करने लगा। परन्तु अब ठाकुर, माँ के आविर्भाव से सतयुग का सूत्रपात हो गया। माँ का आविर्भाव एक नारी प्रधान उन्नत समाज का संकेत करता है। आज हम विश्व में सर्वत्र नारी जागरण एवं विकास के लक्षण देखते हैं।

माँ सभी समय अन्तर्मुखी रहती थीं। 'अन्तर्मुखी भव'— यह माँ का कहना है। सारे काम करते हुए भी माँ सदा जप और ध्यान में लगी रहती थीं। कहतीं— 'जप-तप से इन्द्रियों-बिन्द्रियों का प्रभाव कट जाता है।' पृथ्वी के समान सहिष्णु बनना चाहिए। कहतीं— जो सहेगा, वही रहेगा।

लज्जा नारी का भूषण है। उन्होंने लज्जाशीलता, क्षमाशीलता आदि

गुणों को अपने जीवन के माध्यम से प्रकटित किया —

'आपनि आचरि धर्म जीवेरे शिखाय'।

सारे धर्म-कर्म खुद अपनाकर दूसरों को सिखाना— यही उनका सिखाने का उपाय था। वे कहतीं— ''परिवार में किस प्रकार रहना चाहिए, जानते हो?— जब जैसा तब तैसा, जिसको जैसा उसको वैसा, जहाँ जैसा वहाँ तैसा।'' संसार में सभी को मान देकर, सभी को कुछ-कुछ अधिकार देकर स्वयं कुछ नीचा होकर चलना चाहिए। इसी से संसार में सुख, शान्ति स्थायी रहेंगे।

माँ कहती थीं, ''कौन भला, कौन बुरा— मैं जानती हूँ।'' वे कहतीं— ''दोष तो मनुष्य में लगे रहते हैं, उन्हें ठीक कैसे किया जाए, यह कितनों को पता है?'' माँ किसी में दोष देखती ही नहीं थीं। कहती थीं, मुझे तो किसी में कोई बुराई नजर ही नहीं आती। मैं कैसे ठीक करूँ किसी को? सब हैं ठाकुर के बेटे। वे सब ठीक कर लेंगे :—

''हे जीव, शरणागत हो, केवल शरणागत हो।''

उसी से 'महामाया दया करके रास्ता छोड़ देंगी' ताकि हम ठाकुर (ईश्वर) की ओर जा सकें। किसी भक्त से कहतीं 'जप-तप द्वारा कर्मपाश कट जाता है।' कर्म के साथ-साथ करने से वह कर्म सम्पूर्ण सफल होगा।

माँ की जीवन शैली (Life style) से, हम सबको दैनिक जीवन कैसे बिताना चाहिए, यह शिक्षा मिलती है। उनके जीवन की हर घटना है शिक्षा। माँ की शिशुसुलभ सरलता किन्तु निर्भीक तेजस्विता है एक आश्चर्य वस्तु। किसी कष्ट की परवाह न करना और सदा परमानन्द में रहना, नहबत के कमरे में घुसते समय सिर टकरा जाता था। किन्तु यह सब था अतितुच्छ। माँ को कुछ परवाह नहीं। उनके हृदय में सदा आनन्द से पूर्ण घट स्थापित रहता। कभी अशान्ति का नाम भी नहीं, सदा पूर्ण आनन्दरूपिणी माँ।

नारी शिक्षा के विषय में माँ बड़ी उत्साही थीं। उन्होंने निवेदिता के विद्यालय का उद्घाटन किया। अंग्रेज़ी सीखने को भी लड़कियों को उत्साहित

करतीं। प्राय: अशिक्षित महिला होते हुए भी उनमें एक ऐसी दूरदृष्टि थी, यह है एक विस्मयकारी घटना!

किसी भी कुसंस्कार के वशी न होना और सदा स्वच्छ दृष्टि से सब कुछ ग्रहण करना माँ का एक विशेष गुण था। स्वामीजी की मानस कन्या सिस्टर निवेदिता को ग्रहण किया था अपने हृदय से। उनके साथ बैठकर सप्रेम खाना भी ग्रहण किया करतीं। स्वामीजी ने एक बार बड़े उल्लास से कहा था, 'सोच सकते हो मास्टर महाशय, उनके साथ बैठकर खाया भी! है न विलक्षण बात?'

जब कोई भक्त महिला अपनी पुत्री की शादी नहीं कर पाती थी तब माँ कहतीं— बेटी को निवेदिता के स्कूल में रखकर पढ़ाने से सब बिल्कुल ठीक हो जाएगा। अगर शादी के लिए लड़की राजी न हो तो परम पवित्रता स्वरूपिणी माँ का उपदेश होता— वासना और कामना का सम्पूर्ण त्याग करो। हम अपनी ही इच्छा से कामना और वासना के वश हैं। वासना के कारण ही है फिर मृत्यु और फिर जन्म। हमें उन्हीं से निरन्तर प्रार्थना करनी चाहिए और रहना चाहिए उन्हीं के शरणागत।

माँ रोज प्रात: तीन बजे से जप-ध्यान में लग जाती थीं। किसी को भी अप्रिय सत्य न कहना, किन्तु अन्याय भी न सहना, उसका जरूर प्रतिवाद करना, किसी का भी अनिष्ट न करना— यह भी थी उनकी सीख।

जगन्माता की शिक्षा में से हम थोड़ा भी यदि अपने जीवन में अपनाएँ तो यह समाज, संसार अति सुन्दर बन जाएगा, सुधर जाएगा। ठाकुर ने कहा था माँ के बारे में— ''वह है सरस्वती— ज्ञानदायिनी। जगत में आयी हैं ज्ञान देने के लिए। इस परमार्थिक ज्ञान से ही समस्त दु:खों की निवृत्ति होगी।''

—अनुराधा दासगुप्ता

7

Holy Mother's Method
of
Teaching

Holy Mother's teachings are reflected in her every day-to-today behaviour. She preferred to demonstrate than to preach and speak, and as such, she was a perfect spiritual teacher because spiritual life pertains more to practice than to theory. Let us peep into some of her methods of teaching through the following incidents of her life.

The method of teaching of Shri Ramakrishna, Swami Vivekananda and the Mother Shri Saradamani Devi were different from one another. Shri Ramakrishna was very selective and his disciples were mostly intellectuals. He used to impart knowledge in the form of conversations, stories, devotional songs based on Vedanta, popularly known as 'Practical Vedanta'. However simple it might be, it was not easy for common people to understand, and to implement it in their life; even today we need learned commentators to explain them. Swami Vivekananda was a world-renowned teacher. His mode of teaching was through public lectures, conversations and interactions, conducting classes, – all based on scriptures. His disciples were mostly intellectuals.

For the Holy Mother, Shri Saradamani Devi, the case

was entirely different – all human beings were her children and she was to take care of them all. Her method of teaching was unique – leading a modest householder's life she demonstrated how to lead an ideal human life and imparted knowledge through her behavior, actions and instructions during the process of her daily chores. This brought her down to the same platform as commoners and to embrace all with her divine motherly love and affections. She was easily approachable by all because of her informal behavior and all could understand her teachings because of her simple language. She assured everyone saying, "I am your true mother, a mother not by virtue of being your guru's wife, nor by way of empty talk, but truly the mother."[1]. She went further to say – "I am the mother of virtuous as well as the wicked. …Why should you worry?"[2].

While at Kashipur (Udyaan Baati), the God-incarnate Shri Ramakrishna desired her to take care of the bewildered people of Kolkata (here Kolkata is indicative of the Universe) but the Mother was in disagreement and hesitant. Then Shri Ramakrishna mentioned – "What after all has this one (indicating his body) done? You'll have to do much more."[3]. The Mother lived 34 years after the *Mahasamadhi* of Shri Ramakrishna to teach mankind!

Reminiscences by her close monastic and householder disciples give us an insight of her day-to-day life and style of functioning and thus give us an opportunity to know her intimately, so much so that even today it creates a feeling of her very physical presence among us. She adopted a simple method to teach mankind – that was her life style. She demonstrated ideal human virtues in her day-to-day's life, and

1 The Universal Mother, P52

2 The Gospel of the Holy Mother Sri Sarada Devi, P596

3 The Universal Mother, P39

taught us how to lead an ideal human life – that may be of a householder or of a monk. Her life was her teaching!

In those days Bengal was plagued with superstitions, illiteracy, untouchability, child marriage, polygamy, *Pardah* system, exploitation and oppression of women, poor and lower caste people, and fear of ostracism. On the other hand, oppression by British rulers, underdevelopment and lack of basic necessities, unhygienic living conditions, poverty, etc. added to the problem of the common people. Overcoming all those odds, the Mother appeared as a messiah and taught the mankind to lead a moral and meaningful human life.

At Jayrambati she lived a householder's life among her unreasonable, greedy and quarrelsome brothers and their family members. Her widowed sister-in-law Surabala (*Paglimami*) was an insane and the Mother brought up her daughter Radhu, a very moody child. Maku and Nalini, the neglected children of her brother Prasanna Kumar's deceased first wife, were also living with her. The nieces did not have good relations among themselves, and did not see eye to eye. The Mother managed them with ease, and offending none. Her calm and quite nature taught us how to deal patiently in such a complex situation. She said, "One should have the quality of endurance like earth."*.

There used to be a regular flow of devotees – householders, *Sadhus* and *Brahmachari*s – coming from far off places at any time of the day and night. We cannot even guess how she would manage their food and other needs in a remote village like Jayrambati, where everything was in scarce. Day and night, she did all kinds of household work tirelessly – cooking, cleaning, washing, arranging daily needs and even carrying those on her head at times; side by side she would

* The Universal Mother, P102

take care of their personal problems, and would initiate devotees. Even then she would remain cool and composed, and would entertain all lovingly and respectfully. No earthly disturbance could shake her! In this context she said, – "Do you know how to live in this world? – Where you are be of there, deal with it the way it needs, live at the hour in conformity with need of the hour."[1] To maintain harmony, her advice was – "Never tell the unpleasant truth" … "It is easy to break. How many can build? All can criticize and make fun of a person; but how many can bring him on the right path?"[2].

Before sending presents to Radhu's house she consulted Nalini and took her into confidence to avoid any future complication. She said, "Whatever you may do, you have, as a matter of fact to give everybody due attention and take their opinion. You have to grant a little freedom and watch from a distance so that nothing may go wrong."[3]

She could never find fault with anyone, and was kind to all. She asked not to think ill of others and not to inflict injuries – "Don't ever ask God to sit in judgment. Rather pray for the good of the oppressor."[4]

The Mother taught us how to love the socially neglected, the errant and the downtrodden, irrespective of their caste and creed. All such people were her devotees and they used to come to her freely and enjoy her hearty love and care. She used to say, "To err is human; but a few know how to bring errant person to the right path."[5] Out of all Amjad was a classic example – he was a thief and a robber. He would visit the Mother often and extend minor service. One day she seated him for a meal and Nalini was serving. Having strong bias of

---

1 The Universal Mother, P102
2 *ibid*, P102
3 *ibid*, P60
4 *ibid*, P79
5 *ibid*, P64

caste and religion, Nalini stood at a distance and tossed the food on his leaf-plate. Displeased with that the Mother asked her to serve properly, saying – "Can one have any relish for food if it is served in such a fashion? If you can't serve properly, I shall do it." The Mother cleansed the place after Amjad finished his meal. Nalini condemned the act saying the Mother would lose her caste. The Mother cut her short saying, "Amjad is as truly my son as my Sarat (Saradananda)."[1]

Once Nalini was in a angry mood. The Mother reprimanded her saying, 'Women should not get angry so easily. They must practice forbearance.'[2] The Mother professed women to be modest. She would remain veiled in front of her male devotees – one could see her feet only. One evening some women devotees came to see her and one of them was decorated with gorgeous dress and ornaments. Referring to her, the Mother said, 'For a woman, modesty is her ornament.'[3]

She was averse to any wastage. One day a devotee brought some fruits in a basket and after delivering the fruits he asked monks what to do with the basket. The monks told him to throw it out. Swami Arupananda, in his reminiscences, records – 'The Mother got up and went to the porch. She looked at the lane and said to me, "Look there. They have asked him to throw away such a nice basket! It does not matter for them in the least. They are all monks and totally unattached. But we cannot allow such a waste. We could have utilized the basket at least for keeping the peelings of the vegetables." She asked someone to fetch the basket and wash it. The basket was kept for some future use. I learnt a lesson from her words. But we are so slow to learn.'[4]

---

1 The Universal Mother, P77

2 The Gospel of the Holy Mother Sri Sarada Devi, P95

3 *ibid,* P763 4 *ibid,* P121-22

One day, an attendant was sweeping the place while the Mother was rubbing oil on her body. The attendant threw the broom after sweeping. The Mother objected; saying, "Whatever you care for, will care for you also. Won't you need it again? That aside, in this family it also is a part. From that angle also it deserves a certain regard. Whatever regard a thing deserves, that must be accorded to it. Even the broom has to be replaced respectfully. An ordinary work too must be done with care and attention.[1]

The Mother was against mania for cleanliness, or otherwise any kind of superstition. She did not give importance to external purity. She termed it as 'obsession'. One day Nalini came with the wet cloth – she had taken bath because a crow had 'urinated' on her. The Mother said, 'I am an old woman now, I have never heard of crows urinating! Your mind is impure. Can the mind lose its purity without great sins?'

One day Golap-Ma cleaned the toilet in Udbodhan and then after changing her cloth started dressing fruits for offering in the shrine – Nalini criticised such an act. But the Mother said, 'How pure is Golap's mind! How high-souled she is! …She does not at all bother about the rules regarding external purity. …The mind is rendered pure as the result of many austerities. …and through such a pure mind one attains knowledge and spiritual awakening.'[2]

She taught us not to encourage narrow and orthodox view of the society. She welcomed Sister Nivedita and other European and American devotees unhesitatingly and ate with them. And it was in a time when all were scared of getting punished for such an act. Overwhelmed by this generous and

---

1 The Gospel of the Holy Mother Sri Sarada Devi, P756

2 *ibid,* P 366-68

courageous approach of the Mother, Swami Vivekananda wrote to his brother disciple, Shri Ramakrishnananda, '…Sri Mother is here, and the European and American ladies went the other day to see her, and what do you think, the Mother ate with them even there! Is not that grand?'[1]

She was in favour of women's education to socially uplift them. She encouraged the parents to send their daughters to Sister Nivedita's school. Once a female devotee expressed her worry to the Mother about her daughter not getting married. The Mother advised her to send her daughter in Sister Nivedita's school.

The Mother supported the idea of Swami Vivekananda – 'Service to mankind is service to God'. She was pleased to see the service work at Benaras Home of Service, and appreciated the sincerity and dedication of the monks who were serving the destitute. Also, she donated ten rupees. Prior to this there was difference of opinion between the disciples of Shri Ramakrishna on this issue. She opined that one cannot remain absorbed in meditation and *Japa* for twenty-four hours, and advised to carry out all work in the name of Shri Ramakrishna.

She used to repeat His Name a hundred thousand times in a day even in the midst of her busy daily routine. On a question regarding benefit of repetition of His Name (*Japa*) even without earnestness, the Mother opined that practicing *Japa* and meditation regularly one's mind gets steady. She further explained – "Whether you get into water willingly or are pushed, your clothes will be soaked. Practice meditation regularly, for your mind is still unripe." One should constantly discriminate between the real and the unreal. "Know the worldly objects to which the mind is drawn to be unreal and

1 The Universal Mother, P98

surrender your mind to God." "...The aim of life is to realise God and remain immersed in the contemplation of His holy feet always."[1]

Disguising her divinity, she led an unparalleled householder's life, and apparently looked very much attached to it. However, she was addressed as 'Queen of renunciation' by her monastic disciples. On renunciation she told to a householder devotee, "Householders need not have external renunciation. Internal renunciation will come to them of itself." She further assured, "Surrender yourself to the Master and always remember that he is behind you."[2]

She could never find fault with anyone. Whenever we do so it takes our mind to a lower plane. She said, – "Man is bound to make mistakes. If one does not follow this rule, it harms oneself alone. By constantly finding the faults of others, in the end one will become a mere fault-finder."[3] During another conversation she mentioned, "I can no longer see or hear of anybody's faults, my dear. ...In earlier days I also had an eye for people's faults. Thereafter I wept and wept before the Master, praying, 'O Master, I do not wish to find anyone's faults' and finally got rid of that habit.'[4]

A few days before she left the mortal plane she told an anxious female devotee, – 'But one thing I tell you – if you want peace, my daughter, don't find fault with others, but find fault rather with yourself. Learn to make the world your own. Nobody is a stranger to you, my dear; the world is yours.'[5] This was her last teaching to the world!

— Ashish Dasgupta

---

1 The Gospel of the Holy Mother Sri Sarada Devi, P436
2 *ibid*, P596
3 *ibid*, P699/700
4 *ibid*, P739/40
5 The Universal Mother, P134

Thakur's Training

"Thakur had an eye on everything. Devotees who went to him were trained by personal demonstration. He used to say, 'He who can keep account of salt can also keep account of sugar-candy.' A person who is slovenly, ever careless in the simple tasks of daily life, will have difficulty progressing in spiritual life. It is with this very mind that one reaches Him. If there is insincerity or mistaken ideas in the mind, He cannot be attained. Because he bought a pot with a crack in it, Yogen Swami (Swami Yogananda) was scolded badly by Thakur. He said to Yogen, 'Is the shopkeeper Yudhishthira, a personification of spirituality? He will, of course, try to sell his trash. Why didn't you examine it before bringing it here? You have eyes in your head.' He was asked to go back then and there and bring a new one in exchange.

...

"The whole life should be a spiritual life, all work spiritual practice. Religious conduct for a while and contrary conduct afterwards will not do. Whether eating, walking, sleeping, dreaming, telling beads, concentrating, worshipping or reading the scriptures, in every condition, the mind should remain centered round one thought, one ideal: realization of God."

—'M. the Apostle and the Evangelist Part-I'

श्रीरामकृष्ण परमहंस

- जन्म : 18 फरवरी, सन् 1836 ईसवी।
- स्थान : कामारपुकुर (हुगली ज़िले का अन्तर्वर्ती ग्राम)
- माता–पिता : श्रीमती चन्द्रमणि देवी और श्री क्षुदिराम चट्टोपाध्याय (चटर्जी)।
- भाई–बहन : दो बड़े भाई, दो बहनें।
- शिक्षा : कुछ दिन पाठशाला में गए। प्रारम्भ से ही अर्थकरी विद्या से विकर्षण। स्कूल से भागे रहते। लेख सुन्दर। अद्भुत स्मरण–शक्ति।
- विवाह : 22–23 वर्ष की आयु में सन् 1859 में 6–7 वर्षीय सारदा मणि के साथ।
- दक्षिणेश्वर–वास : बड़े भाई रामकुमार की मृत्यु के बाद दक्षिणेश्वर में पुजारी। बाद में पूजा–कर्म से निवृत्त होकर वहीं दक्षिणेश्वर में स्वतन्त्र वास– प्रायः अन्त समय तक।
- महासमाधि : 16 अगस्त, 1886 ईसवी।

■

8

ठाकुर की शिक्षा

वर्तमान युग के सद्य अवतार ठाकुर श्रीरामकृष्ण की वाणी के लेखक कथामृतकार श्री महेन्द्रनाथ गुप्त वा मास्टर महाशय वा श्री म दूसरी बार जब श्रीरामकृष्ण से मिलने गए तो ठाकुर ने परिचय पाने हेतु श्री म से कुछेक प्रश्न किए। फिर पूछा—

''अच्छा, तुम्हारी पत्नी कैसी है? विद्याशक्ति कि अविद्याशक्ति?''

मास्टर— जी भली हैं, किन्तु 'अज्ञान' हैं।

श्रीरामकृष्ण *(विरक्त होकर)*— और तुम ज्ञानी?*

अरे-अरे, यह क्या? अत्यन्त मेधावी छात्र, एन्ट्रेन्स, एफ०ए०बी०ए० आदि-आदि परीक्षाओं में छात्रवृत्ति; विश्वविद्यालय में द्वितीय-तृतीय स्थान प्राप्त; दर्शन, साहित्य, इतिहास, विज्ञान, धर्मशास्त्र, पुराण, काव्य, जैन एवं बौद्ध दर्शन, बाईबल, कुरान आदि में पाण्डित्य प्राप्त श्री म तो ज्ञानी हैं ही और उन्हें ही श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं— और तुम (क्या) ज्ञानी?

मास्टर महाशय तो यही समझते थे कि वे इतना पढ़े-लिखे हैं, वे तो ज्ञानी (पण्डित, scholar) ही हैं। उस समय वे विद्यासागर महाशय के एक विशाल शैक्षणिक संस्थान— मेट्रोपोलिटन इंस्टीट्यूशन के हैडमास्टर थे।

* 'कथामृत' भाग-I, पृष्ठ 27, संस्करण 1998

अपने विद्यार्थियों में वे प्रशंसा के पात्र थे। अपनी विद्वत्ता के कारण वे प्रसिद्ध थे। ऐसे श्री म को ठाकुर कह रहे हैं— और तुम ज्ञानी? कितनी चोट पहुँची होगी श्री म को ठाकुर के ये वचन सुनकर, इसकी कल्पना की जा सकती है। मास्टर महाशय अथवा श्री म का यह भ्रम बाद में दूर हुआ जब उन्होंने ठाकुर के मुख से सुना कि
'ईश्वर को जानने का नाम ही ज्ञान है और उन्हें न जानना ही है अज्ञान।'

ज्ञान किसे कहते हैं और अज्ञान किसे कहते हैं, वे अब तक भी जानते नहीं हैं। अब तक केवल इतना ही जानते हैं कि लिखना-पढ़ना सीख लेना और पुस्तक पढ़ सकना ही ज्ञान है।[1]

अपनी प्रथम भेंट में ठाकुर श्रीरामकृष्ण के मुख से हरि-कथा, भगवत्-कथा सुनकर मास्टर सोच रहे हैं—

"...कैसा सुन्दर मनुष्य! कैसी सुन्दर कथा!...
उन्होंने सोचा ऐसी सुन्दर बातें कह रहे हैं तो अवश्य ही ये खूब पढ़े-लिखे होंगे। उन्होंने वृन्दे दासी से पूछ ही लिया—

मास्टर—अच्छा, ये क्या खूब किताबें पढ़ते हैं?

वृन्दे— अरे बाबा, किताबें-शिताबें— सब इनके मुख में हैं।

'ठाकुर श्रीरामकृष्ण पुस्तकें पढ़ते ही नहीं'... यह सुनकर मास्टर अवाक्।[2]

पाँच वर्ष की आयु में श्रीरामकृष्ण को गाँव की पाठशाला में भेजा गया। साधारण-सा पढ़ना-लिखना उन्होंने सीखा। पर पढ़ने में उनकी विशेष रुचि न थी। हिसाब में उन्हें गड़बड़ लगती (शुभंकरी धाँधा लागतो)। पर मूर्ति गढ़ने और चित्र आँकने में वे थे अव्वल। उनकी स्मरण शक्ति थी विलक्षण। एक बार जो देख वा सुन लेते, उसे कभी न भूलते। गाँव में कथा, नाटक, गान होते ही रहते थे। सुन-सुनकर ही उन्हें भजन-गीत-पौराणिक उपाख्यान, नाटक के संवाद, सब याद हो गए थे। घर के निकट ही लाहा बाबुओं के बाग

1 श्रीरामकृष्ण कथामृत भाग-I, पृष्ठ 27, द्वितीय संस्करण, 1998

2 श्रीरामकृष्ण कथामृत भाग-I, पृष्ठ 23, द्वितीय संस्करण, 1998

में, अतिथिशाला में सर्वदा साधुओं का आना-जाना लगा रहता था। श्रीरामकृष्ण साधु-संग व साधु-सेवा के लिए वहाँ जाया करते। कथावाचकों से सुन-सुन कर उन्होंने रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत की कथाएँ सब याद कर ली थीं।

सात वर्ष की आयु में श्रीरामकृष्ण के पिताजी का निधन हो गया था। उन्होंने पाठशाला जाना बन्द कर दिया। बाद में श्रीरामकृष्ण जब सत्रह वर्ष के हुए, उनके बड़े भाई रामकुमार उन्हें अपनी पाठशाला में पढ़ने के लिए कलकत्ता ले आए। बड़े भाई ने चाहा वे थोड़ा पढ़ना-लिखना सीख लें। पर श्रीरामकृष्ण को स्कूली पढ़ाई में कोई रुचि नहीं। भाई के तनिक रोष प्रकट करने पर स्पष्ट बोल दिया— ''दाल-भात देने वाली शिक्षा में मेरी रुचि नहीं। मैं तो ऐसी विद्या सीखना चाहता हूँ जिससे सच्चा ज्ञान मिले।''

तो ठाकुर रामकृष्ण को युवावस्था में ही अनुभव हो गया था कि स्कूल में मिलने वाला पुस्तकीय ज्ञान 'सच्चा ज्ञान' नहीं है। तभी तो पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त श्री म को कहा था— और तुम ज्ञानी ?

आश्चर्य होता है कि पुस्तकें, शास्त्रादि पढ़े बिना निरक्षर श्रीरामकृष्ण को ऐसा ज्ञान कैसे हो गया ? मास्टर महाशय ने द्वितीय दर्शन के समय ठाकुर की बातों से प्रभावित होकर उनसे कुछेक प्रश्न किए थे। अपने प्रश्नों का उत्तर पाकर वे सोच रहे हैं—

''...इस दरिद्र ब्राह्मण ने किस प्रकार यह सारा गम्भीर तत्व अनुसन्धान किया है और जाना है ! इतने सहज में ये समस्त बातें समझाते हुए तो उन्होंने अब तक किसी को भी नहीं देखा है।''*

आश्चर्यचकित रह गए थे श्री म ठाकुर के मुख से संसार व ईश्वर-तत्त्व की व्याख्या सुनकर। और वे ठाकुर के ही होकर रह गए। ठाकुर-वाणी ही उनके लिए शास्त्र हो गयी, उसे ही उन्होंने लिखा 'कथामृत' (पाँच भागों में) ठाकुर की इच्छा से, ठाकुर के देहावसान के बाद और उनकी वाणी का ही प्रचार-प्रसार रहा उनका प्रमुख कार्य।

---

* श्रीरामकृष्ण कथामृत भाग-I, पृष्ठ 32, द्वितीय संस्करण, 1998

श्री म की भाँति ही स्वामी विवेकानन्द भी थे उस समय के इंग्लिश जैन्टलमैन। वे भी ठाकुर से इतने प्रभावित कि ठाकुर के साथ तर्क-वितर्क करते रहे, पर आते रहे उन्हीं के पास अन्त तक। इतना आकर्षण था उनका श्रीरामकृष्ण के प्रति।

स्वामीजी स्वयं कह रहे हैं—

"...मैंने वर्षों तक उनके (श्रीरामकृष्ण के) चरणों-तले बैठकर शिक्षा-लाभ का सौभाग्य प्राप्त किया।

"...श्रीरामकृष्ण धूल के एक-एक कण से मेरे जैसे लाखों विवेकानन्द बना सकते हैं।..."*

देखते हैं कि बाद में, इन्हीं निरक्षर रामकृष्ण के समक्ष बड़े-बड़े शास्त्रविद् तत्त्व-व्याख्या के समय केंचुए जैसे बने रहते थे। दरअसल बात यह है कि इन सभी शास्त्रविदों के पास था पुस्तकीय ज्ञान, शास्त्रों का ज्ञान और श्रीरामकृष्ण का था निज का अनुभव।

स्वामी विवेकानन्द ने जब श्रीरामकृष्ण से पूछा था—
महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?
तो उन्होंने उत्तर दिया था—
हाँ, मैंने ईश्वर का दर्शन किया है। ईश्वर को देखा जा सकता है। जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ, बल्कि उससे भी अधिक स्पष्टतर रूप में।

कथामृत पढ़ते समय हम देखते हैं कि भक्तों के साथ बात करते-करते श्रीरामकृष्ण अचानक भावमग्न हो जाते हैं और कहने लगते हैं— 'एई जे मा एसेद्दन (देखो, माँ आई हैं)।' यही नहीं, वे माँ की वेशभूषा का भी बखान करने लगते हैं, कभी माँ के साथ बातें करने लगते हैं और हँसते हैं। एक पक्ष की बातें भक्त सुन पा रहे हैं, अपर पक्ष है अश्रुत।

श्रीरामकृष्ण वैशिष्ट्य ही यह है कि उन्होंने जो कुछ भी कहा है, वह सब अनुभव के आधार पर। सभी तर्कों का, सभी जिज्ञासाओं का उत्तर उन्होंने

---

* विवेकानन्द साहित्य संचयन, 1993, पृष्ठ 187-88

आत्मद्रष्टा होकर ही दिया है। उनके समस्त ज्ञान का मूल स्रोत आत्मानुभूति ही है। यही कारण है कि श्रीरामकृष्ण इन्द्रियगम्य ज्ञान को ज्ञान ही नहीं मानते। वह ज्ञान तो समस्त जानकारियाँ मात्र हैं। वे कहते— किसी ने दूध सुना है, किसी ने दूध देखा है, फिर किसी ने दूध पिया है। जिसने दूध पिया है, वही दूध क्या वस्तु है, जानता है। अत: उनका मानना और कहना है कि ईश्वरीय ज्ञान अन्य सभी प्रकार के ज्ञानों से भिन्न है, पृथक् है। और ईश्वरीय ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान है, शेष सभी अपूर्ण।

श्रीरामकृष्ण का कहना है कि ईश्वर अनुभूति के विषय हैं। इस परमतत्त्व का स्वयं अनुभव करने के लिए श्रीरामकृष्ण ने अपने साधना-काल में अनेक साधनाएँ कीं— तन्त्र साधना, दास्य-भाव, मधुर-भाव, द्वैत, अद्वैत— ये सभी। और इस्लाम धर्म तथा ईसाई धर्म की भी साधनाएँ कीं। इन समस्त साधनाओं से उत्पन्न निजी अनुभव के आधार पर ही उन्होंने कहा था— समस्त धर्म एक-एक पथ है, एक-एक मार्ग है और ये सभी मार्ग एक ही ईश्वर की ओर जाते हैं। इनमें परस्पर कोई विरोध नहीं। उनकी इस शिक्षा ने समाज को सर्वधर्म समन्वय-दृष्टि दी तथा समस्त धर्म-प्रचारकों एवं धर्मावलम्बियों की पारस्परिक कटुता को दूर किया।

आज के वैज्ञानिक युग में श्रीरामकृष्ण का आगमन निश्चित ही एक ऐतिहासिक घटना है और उनके धर्म सम्बन्धी उपदेश अभूतपूर्व हैं, वैज्ञानिक हैं, उनके अपने अनुभव पर आधारित हैं। यही कारण है कि श्रीरामकृष्ण के पास सभी प्रश्नों के उत्तर थे। उनके समय के सभी प्रतिष्ठित विचारकों, शास्त्रविदों, शिक्षाविदों, सुधारकों ने उनसे मार्गदर्शन प्राप्त किया। अपनी समस्त साधनाओं के पश्चात् अपनी गहन-गम्भीर आध्यात्मिक अनुभूति के आधार पर वे जगत्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हो गए।

अपने अनुभव के आधार पर श्रीरामकृष्ण ने सिद्ध कर दिया कि
'ईश्वर को जान लेना ही है ज्ञान' तथा
'ईश्वर को जान लेने से समस्त जाना जाता है।'

अपनी अति सरल व मनोहर भाषा-शैली में वे सरलता से दुरूह

आध्यात्मिक तत्त्वों को भी सामने वाले के हृदय में सरलता से उतार देते। उन्हें सुन कर जिज्ञासुओं का सारा संशय, द्वन्द्व, अविश्वास तत्काल दूर हो जाता और उनके हृदय में श्रद्धा का संचार होता।

ऐसा ही मास्टर महाशय के साथ भी हुआ। इतना पढ़ा-लिखा होने पर भी, समस्त शास्त्रीय ज्ञान अर्जित कर लेने पर भी मास्टर महाशय संयुक्त परिवार के कलहों से क्लान्त होकर देहत्याग की भावना से घर से निकल पड़ते हैं। दैवयोग से वे ठाकुर रामकृष्ण के पास पहुँच जाते हैं। ठाकुर के साथ हुई अपनी चार मुलाकातों में ही उनकी बुद्धि में प्रकाश हो जाता है, उनका रूपान्तरण हो जाता है और वे इसी 'ज्वलन्त अनल' संसार का सामना सरलता से कर लेते हैं भावी जीवन में।

श्री म के उदाहरण से हम समझें कि पढ़-लिख लेने पर भी पुस्तकीय ज्ञान संसार के दु:खों से हमारी रक्षा नहीं कर पाता। दु:ख के समय कौन-सा ज्ञान, कौन-सी शिक्षा हमारी रक्षा कर पाने में समर्थ है, श्री म के माध्यम से हम सभी को वह ज्ञान मिलता है ठाकुर-वाणी में, ठाकुर की शिक्षा में, जो श्री म द्वारा लिखित 'कथामृत' के पाँच भागों में वर्णित है।

ठाकुर की उस शिक्षा के अनुसार थोड़ा भी चलने से प्रत्येक का मंगल होगा— पढ़े-लिखे का भी और अनपढ़ का भी।

—डॉ० निर्मल मित्तल

9

What is
Real Education?

In order to understand what is real education, it is important to know the human being in totality which our scriptures have defined thousands of years ago and is very relevant even today to gain eternal peace and happiness.

The human being is constituted of five sheaths or koshas. These are the annamaya kosha, pranamaya kosha, manomaya kosha, vijṅanamaya kosha and then the anandamaya kosha.

The body of man composed of essence of food is the physical sheath called annamaya kosha. From food are born all creatures which live upon food and after death return to food.

Different from the physical sheath is the vital sheath, the pranamaya kosha. This is encased in the physical sheath and has the same form. Through this the senses perform their office and that the men and beasts derive their life. This sheath is the living self of the physical sheath. It is the basic fabric of this universe both inside and outside of our body.

Different from the vital sheath is the mental sheath, or

the manomaya kosha. This is encased in the vital sheath and has the same form. The mental sheath is the living self of the vital sheath. It is our mental and emotional library, the subtler layer of our existence.

Different from the mental sheath is the intellectual sheath, or the vijnanamaya kosha. This is encased in the mental sheath and has the same form. All actions, sacrificial or otherwise, pay homage to the intellect. All the senses pay homage to the intellectual sheath. The conscience within that continuously guides us to do a thing, or not do a thing is the vijnanamaya kosha. This sheath is the discriminating faculty.

Inside the intellectual sheath is encased the bliss sheath, called anandamaya kosha. Ananda is the basic stuff of this universe from which everything has been created.

The annamaya kosha and pranamaya kosha, these two constitute the gross body. The manomaya kosha and vijnanamaya kosha, these two constitute the subtle body. The causal body is anandamaya kosha.

The aim of all education and learning should be to transcend all these sheaths and eventually reach the Self, the Bliss. However, in order to attain the knowledge of Brahman, knowledge of material knowledge is essential. As Sri M. has pointed out, "Next to worldly knowledge is the knowledge of the Absolute – brahmavidya. Material knowledge is a step towards the knowledge of Brahman."*

Upon being asked, "Sir, if God-realization is the sole aim of life, why is it necessary to learn so many things," M. replied, "Well, if one can call on Him without ceasing, nothing more is needed. But how many people can do that? That's why there are so many kinds of work – but of all the different

---

* M., the Apostle & the Evangelist, Volume I, Chapter 3.

pursuits, education and learning is the best. The period of study is the period of brahmacharya. Engaging one's mind in the pursuit of knowledge, many difficulties can be eliminated by themselves.

"Different kinds of education and information service a purpose. How many-sided was Swamiji! How much did he know and how much did he study! That's why he was able to deal so well with everyone in foreign lands. Chaitanya Deva was a great scholar of grammar, logic and the Vedanta. He gave up all these pursuits but later their very knowledge enabled him to defeat famous scholars in argument. Thakur used to say, 'One can kill oneself with a nail-knife, but to kill another person, one needs a sword and a shield.' Looking at one's life in retrospect, one can understand why all these studies are essential.

"However, as one grows spiritually, a time comes when just material knowledge and education starts appearing futile and a burden to carry along. The Chandogya Upanishad talks of Narada who had mastered all branches of knowledge and had no peace. So he came to Sanatkumara and asked to be taught. To Sanatkumara's question, "What have you already studied?" Narada replied that he had studied all the branches of learning – art, science, music, philosophy and sacred scriptures. "But," said he, "I have gained no peace. I have studied all this, but the Self I do not know. I have heard from great teachers like you that he who knows the Self overcomes grief. Grief is ever my lot. Help me. I pray you, to overcome it."

Sanatkumara said, "Whatever you have read is only name. Meditate on name as Brahman." Narada asked: "Is there anything higher than name?"

"Yes, speech is higher than name. It is through speech

that we come to know the many branches of learning, what is right and what is wrong, what is true and what is untrue, what is good and what is bad, what is pleasant and what is unpleasant. Meditate on speech as Brahman."

"Sir, is there anything higher than speech?" asked Narada.

"Yes, mind is higher than speech. As the closed fist holds two amalaka fruits, so does mind hold name and speech. Mind is the chief inner organ of the Self. It is the means to happiness. For if a man thinks in his mind to study the sacred hymns, he studies them; if he thinks in his mind to do certain deeds, he does them; if he thinks in his mind to be happy in this world and the next, he is happy. Meditate on the mind as Brahman.

"Sir, is there anything higher than the mind?"

"The will is higher than mind. For when a man wills he thinks in his mind; and when he thinks in his mind, he puts forth speech; and when he puts forth speech, he clothes his speech in words. All these, therefore, center in will and abide in will. Meditate on will as Brahman.

"Sir, is there anything higher than will?" asked Narada.

"Yes, discriminating will is higher than will. For when a man discriminates by analyzing his past experiences and considering on the basis of these what may come in the future he rightly wills in the present. Meditate on discriminating will as Brahman."

"Sir, is there anything higher than discriminating will?"

"Yes, concentration is higher than discriminating will. Those who achieve greatness in this world reach it through concentration. Thus while small and vulgar people are always gossiping and quarrelling and for lack of concentration abusing one another, great men, possessing it, gain their reward.

Meditate on concentration as Brahman.

"Sir, is there anything higher than concentration?"

"Yes, insight is higher than concentration. Through insight we understand all branches of knowledge and we understand what is right and what is wrong, what is true and what is false, what is good and what is bad, what is pleasant and what is unpleasant. This world and the other worlds we understand through insight. Meditate on insight as Brahman.

Then said Sanatkumara: "But, verily, he is the true knower who knows eternal Truth."

"And only he who has faith and reverence reflects on the eternal Truth. And only he who attends on a Guru gain faith and reverence.

"It is written: *He who has realized eternal Truth does not see death, nor illness, nor pain; he sees everything as the Self, and obtain all.*

"He who knows, meditates upon, and realizes this truth, finds that everything – primal energy, ether, fire, water, and all other elements, mind, will, concentration, speech, sacred hymns and scriptures, indeed the whole universe – issues forth from it.

Thus the venerable Sanatkumara taught Narada how to pass from darkness to light.

Real education is attainment of the knowledge of the Self and can only be taught by an enlightened preceptor.

— Nitin Nanda

ठाकुर श्रीरामकृष्ण

|

श्री म

|

स्वामी नित्यात्मानन्द

|

श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता अपने पास आने वाले भक्तों से कहा करतीं—

> देखो! ठाकुर तुम्हारे कितने समीप हैं! तुम आपस में एक-दूसरे का हाथ पकड़ो, फिर अन्तिम जन का हाथ पकड़ते हुए कहतीं— देखो, तुम सब का हाथ है मेरे हाथ में, मेरा हाथ है स्वामी नित्यात्मानन्द के हाथ में, उनका हाथ है श्री म के हाथ में और श्री म ने पकड़ा है ठाकुर को; तो तुम सब हो ना ठाकुर के पास! कहाँ दूर हैं ठाकुर तुमसे? तुम सब हो ठाकुर के अपने बालक! उनके निजी जन! एक हाथ से ठाकुर को पकड़े रखो कस कर! फिर तुम संसार में गिरोगे नहीं।
>
> श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता की यह आश्वस्त वाणी उनके साथ जुड़े ठाकुर-भक्तों का आज भी मंगल कर रही है। उन्हीं की प्रेरणा से उनके साथ जुड़े ठाकुर-भक्त श्री म ट्रस्ट के माध्यम से आज भी ठाकुर-सेवा में लगे हैं।

❖

10

विविधा

1. हिन्दी श्री 'म' दर्शन का प्रादुर्भाव

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता को हम मम्मी कहकर सम्बोधित करते रहे हैं। इसका कारण तो मैं आज तक नहीं समझ पाया, किन्तु इस प्रकार सम्बोधित होकर उन्हें बहुत ही अच्छा लगता था और ऐसे में उनका करुणामय, मङ्गलमय, कल्याणमय, दिव्य एवं परमार्थस्वरूप जो स्नेह सम्बोधनकर्त्ता को प्राप्त होता था, उससे मैं भी अछूता नहीं रहा।

मुझे मम्मी जी के प्रथम दर्शन 18 मार्च, 1965 को हुए। वे श्री 'म' दर्शन, प्रथम भाग का बंगला से हिन्दी में अनुवाद कर चुकी थीं और उनकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि में बंगला-मिलान से और हिन्दी में भाव और भाषा में सन्तुलन रखने के उद्देश्य से किए गए पुनः-पुनः पाठ से अनेक काँट-छाँट हो चुकी थी। फलतः उन्हें अब एक ऐसे जन की आवश्यकता थी जिसका लेख सुन्दर हो और जो मम्मी जी की हस्तलिखित पाण्डुलिपि को साफ-साफ नकल करके लिपिबद्ध कर दे।

इस सन्दर्भ में श्री धर्मपाल गुप्त (जो उस समय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रोहतक के प्राचार्य थे) ने गौड़ ब्राह्मण सैण्ट्रल हाई स्कूल, रोहतक के हैडमास्टर श्री जय भगवान कौशिक जी को निवेदन किया कि वे अपने विद्यालय का एक ऐसा विद्यार्थी दें जो प्राचार्य निवास पर आकर मम्मी

द्वारा हस्तलिखित पाण्डुलिपि को पुनः सुपाठ्य एवं सुन्दर रूप से लिपिबद्ध कर दे। हैडमास्टर साहब ने इस कार्य के लिए मुझे संस्तुत कर दिया और मेरे पूर्व जन्म के शुभ कर्म फलोन्मुखी हो गए क्योंकि यहीं से मेरे सत्संग साधुसंग लाभ का सूत्रपात हुआ।

ठाकुर–कृपा से पिताजी ने मुझे अनुमति दे दी और मैं मार्च 18, 1965 को रोहतक की सिविल लाइन्स स्थित प्राचार्य–निवास में प्रातः लगभग 9 बजे पहुँच गया। घण्टी बजाने पर बच्चन नाम का एक सेवक आया और उसने भीतर जाकर मेरे आने की सूचना दी। वह फिर बरामदे में आया और मुझे भीतर एक विशाल और 20 फीट ऊँची छत वाले कमरे में बैठने को कह गया। वह कमरा 'पूजा घर' था और उसमें श्री श्रीठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द, श्री म की छवियाँ एक मेज पर स्थापित थीं और भगवान् श्री रामचन्द्र, वीरभक्त हनुमान आदि देवताओं की छवियाँ दीवारों पर टँगी हुई थीं। मैण्टल पीस पर जगबन्धु महाराज की एक छवि रखी थी जो अनेक गुलदस्तों से घिरी थी। मैं जाकर कालीन पर बैठ गया।

लगभग दस मिनट बाद मम्मी जी ने कक्ष में प्रवेश किया और उन्होंने कोने में रखी एक छोटी चौकी को कागजों समेत उठा लाने को कहा। मैं चौकी लाकर बैठा ही था कि वे भी निकट ही बैठ गईं और बोलीं, "तो तुम हो नौबत राम।" उन्होंने मेरा समग्र परिचय लिया और ब्राह्मण–सन्तान जानकर अतीव प्रसन्न हुईं। फिर उन्होंने उपरोक्त छवि–समूह की तरफ इशारा करते हुए पूछा— इनको पहले कभी देखा है? मेरे कुछ भी उत्तर न देने पर वे मुस्कुराईं और बोलीं, "अच्छा, बाद में सब होगा।"

उन्होंने चौकी पर पहले से ही रखे और टैग से बन्धे कागजों का पुलिंदा उठाकर कहा, "यह पुस्तक छपनी है। इसे साफ–साफ लिखना है। यह पहला अध्याय है। इसका पहला पहरा लिखकर दिखा लो। फिर आगे लिखना। कागज के एक तरफ लिखना है।"

मैंने "अच्छा जी", कहकर लिखना शुरू किया। तभी प्रिंसिपल साहब आए और "अच्छा मन्नो जी, मैं चलता हूँ", कहकर गैलरी से बाहर

निकल गए। वे एक मृदुभाषी अति सौम्य व्यक्ति लगे। उन्होंने हैट पहना हुआ था। बच्चन ने उनके लिए साइकिल झाड़-पोंछकर मुख्य द्वार के पास खड़ी कर दी थी। वे साइकिल पर सवार होकर कॉलिज के लिए रवाना हो गए। बाद में जान पाया कि प्रिंसिपल साहब मम्मी जी को 'मन्नोजी' कहकर सम्बोधित किया करते थे।

एक पैरा पूरा लिखे जाने पर मम्मी जी को दिखाया। तब तक वे मेरे लिए एक कप हॉरलिक्स बना लाई थीं। मुझे वह पीने के लिए कहा और स्वयं मेरे लिखे पर दृष्टिपात करने लगीं। पढ़कर मुझे आगे लिखने को कहा और बोलीं, ''लेख इससे भी अधिक सुपाठ्य होना चाहिए। मन लगा कर सुन्दर-सुन्दर लिखना।'' उस दिन पूरे साइज के प्रायः तीन पृष्ठ लिखे गए और दोपहर को मैं अपने घर लौट आया।

इसके बाद मैं नित्य प्रातः नौ बजे 'हिन्दी श्री म दर्शन' प्रथम भाग के पुनःलेखन कार्य के लिए पहुँच जाता और दोपहर तक लिखता। धीरे-धीरे लिखने की मात्रा बढ़ने लगी और लगभग एक सप्ताह के बाद प्रायः 9-10 पृष्ठ प्रतिदिन लिखे जाने लगे। लगभग सवा महीने में लेखन सम्पन्न हो गया और तदुपरान्त मम्मी जी के निरीक्षण में मेरे लिखे का उनकी हस्तलिपि से मिलान किया जाने लगा। संयुक्त अक्षरों को शुद्ध रूप से लिखना सीखने का मुझे स्वर्णिम अवसर मिला। मम्मी जी की पैनी नजर प्रैस में छपने के लिए शुद्धतम रूप में पाण्डुलिपि देना चाहती थी ताकि कम्पोजिटर को कम्पोज करने में आसानी रहे। इसलिए बड़े ही ध्यान से नित्य मिलान होने लगा।

उक्त कार्य चल ही रहा था कि मम्मी जी को पत्र द्वारा ज्ञात हुआ कि पूज्यपाद स्वामी नित्यात्मानन्द जी 12 अप्रैल, 1965 को ट्रेन से आ रहे हैं। वे अपने एक अन्य भक्त श्री वेद प्रकाश प्रभाकर, XEN (PWD), रोहतक के यहाँ ठहरेंगे। मुझे और प्रभाकर साहब को उन्हें लेने रोहतक रेलवे स्टेशन पर शाम आठ बजे पहुँचना था। स्टेशन पहुँचने पर पता चला ट्रेन आ चुकी है। प्रिंसिपल धर्मपाल गुप्त समय पर पहुँच गए थे, सो पूज्य महाराज उन्हें लेकर प्रभाकर साहब के निवास पर पहुँच गए। मैं और प्रभाकर साहब जब घर

पहुँचे तो महाराज गुप्ता साहब के साथ बातचीत कर रहे थे। मम्मी जी 'हिन्दी श्री म दर्शन', प्रथम भाग के मुद्रण के सम्बन्ध में किसी से बात करने दिल्ली गई थीं।

यह मेरा पूज्य महाराज का प्रथम दर्शन था— गेरुआ वस्त्रधारी एक सौम्य व्यक्तित्व— सिर पर रामकृष्ण मिशन वाली गेरुए रंग की टोपी, आँखों पर गोल्डन फ्रेम का गान्धी जी जैसा चश्मा, जेब में बटन के काज में अटकी काली डोर से बन्धी पॉकेट वॉच, नग्नपदे तख्त पर उपविष्ट। प्रभाकर साहब के बाद मैंने भी प्रणाम किया। एक साधुमहात्मा को प्रणाम करके एक विशेष आनन्द और सन्तुष्टि का अनुभव हुआ। एक गेरुआवस्त्रधारी संन्यासी को सम्भवत: यह मेरा श्रद्धा-आदरपूर्वक किया गया जीवन का पहला भूमिष्ठ प्रणाम था।

सबसे पहले महाराज ने मेरा नाम पूछा और फिर मेरे पिता-माता, भाई, बहन के विषय में जाना। फिर बोले, तुमने श्री 'म' दर्शन कॉपी किया, उसमें से कुछ सुनाओ। आज मुझे स्मरण नहीं आ रहा कि इसका मैंने क्या उत्तर दिया। तदुपरान्त पूछा, संस्कृत जानते हो? मेरे 'हाँ, जी' कहने पर बोले, तो कुछ सुनाओ। स्कूल के वार्षिक उत्सव पर मुझसे 'चरित्रस्य महत्त्वम्' (चरित्र का महत्त्व) विषय पर भाषण दिलवाया गया था, मैंने वही रटा-रटाया सुना दिया। आँखें बन्द करके वे सुनते रहे और सुनकर कहने लगे 'बेश, बेश'।

अगले दिन गुप्ता जी हस्तलिखित श्री म दर्शन लेकर छपने देने के लिए देहली चले गए जहाँ मम्मी जी पहले से ही अपनी बेटी डॉ० प्रेम सूरी III/ J-42, लाजपत नगर के यहाँ थीं। पर वहाँ देहली में प्रैस का निश्चय न हो सका, अत: पापा और मम्मी दोनों ही अगले दिन रोहतक आ गए। उनके आगमन पर पूज्य महाराज भी प्रभाकर साहब के यहाँ से प्राचार्य निवास (सिविल लाइन्स, रोहतक) पर ही आ गए।

प्राचार्य निवास पर पूजा-घर में ही महाराज जी के ठहरने की व्यवस्था थी। शयन, विश्राम के लिए ठाकुरों की छवियों के सामने ही सोने के लिए एक तख्त तथा कोने में महाराज जी के वस्त्रादि रखने के लिए एक लकड़ी की

अलमारी थी। मैं भी कालीन पर चौकड़ी लगाकर बैठ जाता था और एक काष्ठ-चौकी पर कागज रखकर मम्मी के निर्देशन-निरीक्षण में मिलान-कार्य करता था। श्री श्रीठाकुर की अनन्त कृपा के फलस्वरूप महाराज के निकटस्थ रहने का प्रचुर समय होता था। स्वामी जी को अपनी एक-एक वस्तु बड़े ही सलीके तथा करीने से रखते-लगाते देखा। अप्रैल, 1965 में प्रातः नौ से अपराह्न अढ़ाई-तीन बजे तक मैं वहीं होता और शाम को अपने घर लौट जाता।

प्रातः स्नान के तुरन्त बाद प्रायः आठ-साढ़े-आठ के बीच महाराज जी को ठाकुर-प्रणाम करते देखता। आहार-ग्रहण से पूर्व 'ॐ ब्रह्मार्पणं' मन्त्रोच्चारण से खाद्य पदार्थ ठाकुर को निवेदन कर दिए जाते, तदुपरान्त महाराज की थाली में भोजन मम्मी जी स्वयं परोसतीं। "मैं कुछ सेवा करूँ", कहने पर महाराज बोले, "हाँ, ऐसा करो मेरा मुँह ले जाओ और वाश बेसिन पर धो लाओ।" मैं कुछ समझ नहीं पाया।

भोजन के बाद महाराज जी साधारण पान स्वयं लगाकर लेते थे। लखनवी मीठे पान का पत्ता उन्हें अच्छा लगता था। एक छोटी-सी टोकरी में गीले कपड़े में पान के पत्ते रहते और एक अलग टीन के बक्से में एक स्टील की छोटी-सी डिब्बी में भीगा चूना तथा अन्य चार डिब्बियों में भुनी सौंफ, भुनी अजवाइन, भुना साबुत धनिया तथा पिसा कत्था रहते। पान का पत्ता कैंची से दो भागों में विभक्त करके उनके पिछले हिस्से पर चूना लगाने के बाद कत्था बुरका दिया जाता और सौंफ, अजवाइन, धनिया समानानुपात में रखकर दो पान बाँध दिये जाते। एक महाराज ग्रहण करते तथा एक अन्य इच्छुक भक्त प्रसाद पाता। कभी-कभी मुझे भी वह पान-प्रसाद मिलता।

एक दिन मम्मी ने कहा, "कल जब स्नान के बाद महाराज ठाकुर-प्रणाम करेंगे तो हम भी साथ प्रणाम करेंगे।" आगामी कल 6 मई, 1965 को हम अपना स्नानादि सम्पन्न करके ताक में रहे कि कब महाराज जी ठाकुर-प्रणाम करने आते हैं। जब आए तो उस दिव्य वातावरण में महाराज संग प्रणाम करके हम अतीव आनन्दित हुए। महाराज का वह ज्योतिर्मय अलौकिक

आभापूर्ण मुखमण्डल आज भी स्मरण होने पर रोमांचित कर डालता है।

•

एक दिन दोपहर का खाना खाने के बाद कुर्सी को डाइनिंग टेबल के नीचे न सरकाने पर और आहारोपरान्त मेज पोंछने के कपड़े को यथास्थान न रखकर मेज के एक कोने में ही छोड़ देने पर महाराज जी बोले, '' 'अमनोयोगी' का धर्म नहीं होता। सब समय ही तो उस सम्पूर्ण के साथ जुड़े रहना होगा। वह इस तरह ऐलो मेलो होने से कैसे हो पाएगा?' मुझे संस्कृत में वार्तालाप करने को कहते थे, इसलिए बोले, ''वस्तूनि निजस्थाने रक्षणीयानि।'' (चीजों को यथा-स्थान ही रखना चाहिए।)

•

महाराज जी शाम को साढ़े छः बजे नित्य भ्रमण के लिए जाते। एक दिन मम्मी की प्रेरणा से मैं भी साथ गया। दिगन्तव्यापी विशाल प्रान्तर देखकर कहने लगे, ''ऐसे स्थानों पर ईश्वर की vastness (विशालता) को महसूस किया जा सकता है। ऐसा स्थान उस विभु रूप के जप-ध्यान के लिए खूब उपयुक्त हो सकता है।'' मार्ग में और भी अनेक बातें हुईं जो पन्द्रह वर्ष की उस उम्र में न तो मेरे समझ आईं और न ही आज याद हैं।

•

आज दिनांक 12 मई, 1965 को झज्जर रोड, रोहतक स्थित नैशनल प्रिंटिंग प्रैस के मालिक श्री इन्द्र सैन जैन जी आए और अनेक चर्चा के बाद श्री म दर्शन हिन्दी प्रथम भाग उन्हें छपने के लिए दे दिया गया।

दिनांक 14 मई, 1965 को महाराज जी एस.एल. मजूमदार के यहाँ कुछ दिनों के लिए अम्बाला चले गए। उनका 17 मई, 1965 को मम्मी के पास पोस्टकार्ड आया। उसमें मेरे लिए भी आशीर्वाद लिखा सुनकर बहुत

आनन्द हुआ— श्री श्रीठाकुर के एक साक्षात् प्रतिनिधि के आशीर्वचन!

22 मई, 1965 के लिखे और 24 मई, 1965 को रोहतक प्राप्त हुए मम्मी को लिखे एक पत्र में मेरे लिए और भी लिखा था : "If you serve mummy, you will be very fortunate." (यदि तुम मम्मी की सेवा करोगे तो बहुत सौभाग्यशाली रहोगे।)

अब श्री 'म' दर्शन के प्रूफ आने लगे। क्योंकि प्रैस मेरे रोहतक के गोपाल कॉलोनी स्थित घर से 'प्राचार्य-निवास' के रास्ते में ही था, तो प्रूफ लाने-दे आने का काम मेरा ही था। गेली प्रूफ तो मैं प्रैस में बैठकर ही देख देता था।

दिनांक 24 मई, 1965 को प्रथम सोलह पृष्ठों के प्रूफ आए। मम्मी इतनी गद्गद् हुईं कि तुरन्त उन्हें करैक्ट करने बैठ गईं और मुझे कॉपी पकड़ा दी। वे बोल-बोलकर प्रूफ पढ़ने लगीं और मैंने प्रैस कॉपी पर नजर रखी कि कहीं कुछ छूट न जाए। द्वितीय प्रूफ शुद्ध हो जाने पर गल्तियाँ लग जाने के बाद प्रिन्ट आर्डर दिया जाता। यह सिलसिला प्रायः चार महीने चला।

उन्हीं दिनों महाराज जी का निम्न पत्र मुझे 14 जून, 1965 को जब मैं पाँच-छः दिन अपने गाँव हो आया तो मिला :—

Swami Nityatmananda
C/o Mr. P.C. Ganguly,
Sugar Mills, Phagwara (Pb.)
4-6-65

My dear Ram ji

God bless you. Thanks for your nice letter. You are doing well by being with mummy. You are fortunate to be in touch with the Gupta family. They have held fast the blissful Feet of Thakur, Shri Ramakrishna, God in human form. Everybody is concerned with his selfish end. But the God's favourites are mainly unselfish. Wordly ambition is good, better is an ambition based on devotion to God. A life without Bhakti is an animal's life. Even selfish Bhakti is good. But better is unselfish Bhakti. If you want of God—

name, fame, wealth, health, learning, it is no doubt good. But if a man wants Bhakti and faith in God, he is better and wiser. The former is sakaam Bhakti or selfish Bhakti. The latter is niskaam Bhakti. Sakaam Bhakti can't give you lasting joy, but nishkaam Bhakti can. Thakur bless you with this Bhakti. This is my prayer to Thakur.

Be with mummy as long as you can. Help her in her works in getting the book printed. Afterwards, you will have plenty of opportunities to travel. Now do Thakur's work. This will be your great tapasya. Guptaji will help you to get in his college.

Love and blessings to you, mummy, Guptaji and Guddi.

God bless you all.

affectionately,

Sd/-, Nityatmananda.

दिनांक 18-9-1965 की शाम ऊर्मि जीजी (मम्मीजी की बेटी) चण्डीगढ़ से आ गईं। दशहरे पर श्री 'म' दर्शन (हिन्दी) प्रथम भाग की 50 कापियाँ मिल गईं। ठाकुर को उन्हें अर्पण किया गया और सन्ध्यारती के पश्चात् 'पापा जी' बड़ी उत्सुकता से उसके पन्ने पलट रहे थे और बोले, ''जैन ने अच्छा काम किया है।''

11-12-1965 को स्वामी जी शाम 8-10 बजे की ट्रेन से आए। मैं स्टेशन लेने गया। रात्रि-आहार के समय पानी का गिलास रखते समय टेबल पर ठीक तरीके से स्थापित नहीं हुआ और लुढ़क गया तथा पानी मेज पर बिखर गया। महाराज बोले, ''सदा अप्रमत्त होकर काज करना होगा। तुम्हें पानी देने को कहा गया था या टेबल पर बिखेरने को?''

रात्रि में शयनार्थ गमन पूर्व प्रणाम करने पर ''स्थिर मतिः भव, भक्तिमान् भव'' का आशीर्वाद मिला। महाराज जी सद्य छपे श्री 'म' दर्शन पर दृष्टिपात कर रहे थे।

— **डॉ० नौबतराम भारद्वाज**

2. श्री म ट्रस्ट—
परिचय, उद्देश्य और गतिविधियाँ

परिचय

श्री म दर्शन ग्रन्थमाला के प्रणेता स्वामी नित्यात्मानन्द जी श्री रामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट (श्री म ट्रस्ट) के संस्थापक हैं।

अपने जीवन में ठाकुर-वाणी का अक्षरशः पालन करने वाले श्री म के पास दीर्घकाल तक रहकर स्वामी नित्यात्मानन्द जी को विश्वास हो गया था कि जगत् के सकल काम-काज करते हुए भी मन से ईश्वर के साथ रहा जा सकता है और यही है शाश्वत शान्ति तथा परमानन्द का सहज, सरल उपाय। परमानन्द की प्राप्ति ही है मनुष्य-जीवन का एकमात्र उद्देश्य। इसी परमानन्द की प्राप्ति जन-जन को हो, इस उद्देश्य से स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने अपने प्रथम गुरु श्री म की स्मृति में 12 दिसम्बर सन् 1967 को श्री म ट्रस्ट (श्रीरामकृष्ण श्री म प्रकाशन ट्रस्ट) को रोहतक में रजिस्टर करा दिया था। 20 दिसम्बर, सन् 1967 को उन्होंने अपनी इस प्रार्थना के साथ विगत सात वर्षों से चल रहे ट्रस्ट-कार्य को नियमित रूप दे दिया था—

> हे कल्याणमय एवं स्नेहमय परम पिता ठाकुर!
> आज हम जगत् के सभी दुःख-सन्तप्त मनुष्यों के लिए शान्ति तथा आनन्द स्वरूप आपकी अमृतमयी वाणी का विनम्रभाव से प्रचार एवं प्रसार करने के

उद्देश्य से इस श्रीरामकृष्ण 'श्री म प्रकाशन ट्रस्ट' (श्री म ट्रस्ट) की स्थापना करते हैं। स्वामी विवेकानन्द, आचार्य श्री म आदि अपने सांगोपांग पार्षदों तथा श्री श्री माँ के साथ आप हमें आशीर्वाद दें, हमारे साथ नित्य वास करें और मंगलमय दिशा में हमारा सदा मार्ग प्रशस्त करते रहें!

इस निष्काम कर्म तथा निःस्वार्थ सेवा-भाव से आपके वस्तु-स्वरूप-नरदेह में अवतीर्ण साक्षात् ईश्वर-स्वरूप को हम सतत अनुभव करें!

हमें वास्तविक शान्ति तथा आनन्द की प्राप्ति हो! समस्त ब्रह्माण्ड के सकल जीव प्रशान्त एवं आनन्दमय हों! समग्र ब्रह्माण्ड में शाश्वत तथा अनन्त सुख-शान्ति का चिरस्थायी निवास रहे! ऊँ तत् सत्!

उद्देश्य

ठाकुर-वाणी का प्रचार-प्रसार

ठाकुर-वाणी जिसे श्री म ने सुना स्वयं ठाकुर-मुख से, जिसे उन्होंने लिपिबद्ध किया 'कथामृत' के पाँच भागों में बंगला भाषा में, उसे ही श्री म के निज मुख से सुना व श्री म के अपने पालन में देखा स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज ने और फिर उसे ही उन्होंने लिपिबद्ध किया 'श्री म दर्शन' के 16 भागों में बंगला भाषा में। इस ग्रन्थमाला में कथामृत में वर्णित ठाकुर-वाणी की स्वयं श्री म द्वारा व्याख्या के अतिरिक्त ठाकुर, माँ, दक्षिणेश्वर एवं ठाकुर के पार्षदगणों की अनेक नूतन कथाएँ भी श्री म द्वारा कथित हैं।

मूल 'कथामृत' तथा 'श्री म दर्शन' के बंगला से हिन्दी और फिर हिन्दी से अंग्रेज़ी-अनुवाद आदि के माध्यम से ठाकुर-वाणी का प्रकाशन, उसका प्रचार-प्रसार और पालन श्री म ट्रस्ट का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

शिव ज्ञाने जीव-सेवा

ठाकुर-वाणी के प्रकाशन, प्रचार-प्रसार के साथ-साथ दुःखी व आपद्ग्रस्त जनों की शिवज्ञाने सेवा, साधु-सेवा भी श्री म ट्रस्ट का अहम् उद्देश्य है।

जन-चैतन्य

इस सबके अतिरिक्त ट्रस्ट का प्रयास रहा है जन-जन को चैतन्य करना। इस दिशा में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता सदैव प्रयत्नशील रहतीं। अपने आदर्श 'श्री म' की भाँति ही मात्र ठाकुर-वाणी के प्रचार-प्रसार में ही नहीं, वरन् उसके पालन में उनका विश्वास रहा। अपने पास आने वाले हर जन से वे यही कहतीं—

> 'ठाकुर-वाणी को पढ़ लेने से, उस पर चर्चा कर लेने से कुछ नहीं होगा जब तक निज का पालन न हो।'

अपने पास आने वाले प्रत्येक जन की निजी व पारिवारिक समस्या को वे ध्यान से सुनतीं, उसे सुलझाने का वे हर सम्भव प्रयत्न करतीं। ठाकुर, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द और अपने गुरु स्वामी त्यिात्मानन्द जी महाराज के जीवन से दृष्टान्त दे-देकर वे प्रत्येक जन को, जो जहाँ है, वहीं से ऊपर उठातीं।

श्री म ट्रस्ट के प्रति पूरी तरह समर्पित श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता रोगों से जर्जर हो गए शरीर से भी निष्काम सेवा द्वारा ट्रस्ट-कार्य को आगे और आगे ले जाने के लिए प्रति पल तत्पर रहीं।

26 मई, 2002 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन वे ठाकुर-गोद में समा गईं।

शकूर बस्ती, दिल्ली में मकान नम्बर WZ-144-1 की अपनी एकमात्र अचल सम्पत्ति भी वे ट्रस्ट के नाम वसीयत कर गईं।

गतिविधियाँ

ठाकुर-वाणी के प्रकाशन-प्रचार-प्रसार की दिशा में अब तक

— कथामृत के सभी पाँच भागों का मूल बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद पाँच भागों में ही प्रकाशित हो चुका है। दूसरे संस्करण भी छप चुके हैं। इन सभी के अंग्रेज़ी में भी पाँचों भाग प्रकाश में आ चुके हैं।

— श्री म दर्शन ग्रन्थमाला के सभी 16 भाग बंगला और हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं और कई भागों के पुनर्संस्करण भी।
इसी ग्रन्थमाला के 'M, the Apostle and the Evangelist' नाम से पहले बारह भागों के अंग्रेज़ी-संस्करण भी छप चुके हैं। शेष चार भाग मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

इसके अतिरिक्त

- सन् 1977 में श्री म के जीवन पर 'A Short Life of M.' नाम से अंग्रेज़ी में एक पुस्तिका निकाली गई।
  श्री म के जीवन पर संभवतः यह पहली पुस्तक थी।
- सन् 1982 में श्री डी०के० सेन गुप्ता के सहयोग से 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत सैंटिनरी मैमोरियल' का सम्पादन-प्रकाशन और
- सन् 1988 में वृहद् ग्रंथ 'Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrit' का लेखन-प्रकाशन सम्पन्न हुआ।

इंटरनैट प्रकाशन

श्री म ट्रस्ट के कुछेक अंग्रेज़ी प्रकाशनों के साथ-साथ दक्षिणेश्वर, मार्टन स्कूल, कांकुरगाछि एवं ठाकुर व श्री म से जुड़े अन्य तीर्थस्थलों के चित्र भी इंटरनैट वेबसाइट http://www.kathamrita.org पर उपलब्ध हैं।

नूपुर

ठाकुर-भक्तों को ठाकुरवाणी की झलकियाँ निरन्तर मिलती रहें तथा वे ठाकुर, माँ सारदा, ठाकुर-वाणी के संवाहक श्री म, स्वामी विवेकानन्द, श्री म ट्रस्ट के संस्थापक स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज आदि का परिचय पा सकें, इस उद्देश्य से ट्रस्ट की तत्कालीन प्रधान श्रीमती ईश्वर देवी गुप्ता की इच्छानुसार सन् 1994 में स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिवस पर 'नूपुर' नाम से एक स्मारिका निकाली गई। इसे अब वार्षिक पत्रिका के रूप में प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जा रहा है।

दैनिक पूजा-अर्चा एवं सत्संग

चण्डीगढ़ के सैक्टर 19-डी में स्थित, श्री म ट्रस्ट की ओर से निर्मित श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत पीठ (श्री पीठ) के ध्यान-घर में दैनिक पूजा-अर्चा के साथ-साथ 'कथामृत', 'श्री म दर्शन' और स्वामी विवेकानन्द-साहित्य का पाठ भी होता है।

चण्डीगढ़-आश्रम के सचिव स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी की उपस्थिति में यहाँ मासिक सत्संग भी होता है। समय-समय पर बेलुड़ मठ से आए साधु जन भी स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी की प्रेरणा से इस मासिक सत्संग में आते हैं।।

वार्षिक उत्सव

दैनिक पूजा-अर्चा एवं सत्संग के अतिरिक्त यहाँ निम्न वार्षिक उत्सवों का आयोजन भी नियमित रूप से होता है —

1. कल्पतरु दिवस, 1 जनवरी
2. स्वामी विवेकानन्द जन्मोत्सव
3. श्रीरामकृष्ण परमहंस जन्मोत्सव
4. कथामृत दिवस, 26 फरवरी
5. श्री पीठ स्थापना दिवस
6. बुद्ध पूर्णिमा
7. स्वामी नित्यात्मानन्द जी का जन्मोत्सव
8. गुरु पूर्णिमा
9. श्री म का जन्मोत्सव, नाग पंचमी
10. श्री म ट्रस्ट स्थापना दिवस, 12 दिसम्बर
11. माँ सारदा-जन्मोत्सव

इन उत्सवों में चण्डीगढ़-आश्रम के सचिव स्वामीजी यथासम्भव स्वयं उपस्थित होकर ठाकुर-भक्तों का मार्ग-दर्शन करते हैं।

भक्तों के घरों में साप्ताहिक/मासिक पाठ व सत्संग

श्री पीठ के अतिरिक्त कुछेक सेवक भक्तों के घर भी साप्ताहिक/मासिक सत्संग तथा कथामृत व श्री म दर्शन–पाठ होता है। पूजा–अर्चा के साथ–साथ यह पाठ श्रीमती गुप्ताजी ने ही प्रारम्भ करवाया था जो आज तक पूर्ववत् चल रहा है।

साधु-सेवा

निर्जन–वास के साथ–साथ ठाकुर ने गृहस्थी के लिए ईश्वर–प्राप्ति का, आनन्द प्राप्ति का एक और उपाय बताया है— साधु–सेवा, साधु–संग।

साधु–सेवा के रूप में ट्रस्ट समय–समय पर साधुओं को सेवा–रूप में रुपया भेजता रहता है।

'श्री पीठ' का विस्तारीकरण

'आत्मनोमोक्षार्थंजगत् हिताय च' के उद्देश्य को लेकर चल रहे 'श्री पीठ' का ठाकुर–इच्छा व उन्हीं की कृपा से विस्तारीकरण–कार्य चल रहा है। इस कार्य के पूर्ण हो जाने पर रोगी–नारायण सेवा एवं पुस्तकालय–सेवा कार्य भी सम्भव हो सकेंगे।

'श्री म' उत्सव

अधिकाधिक जन ठाकुर रामकृष्ण की वाणी एवं ठाकुर के व्यास श्री म तथा उनकी रचना 'कथामृत' के संग परिचय पा सकें, इस उद्देश्य से सन् 1998 से यह उत्सव यहाँ के श्रीरामकृष्ण मिशन–आश्रम के प्रांगण में प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

•

3. मास्टर महाशय-स्मृति-समारोह
(श्री 'म' उत्सव)

स्वामी नित्यात्मानन्द महाराज जी की प्रमुख शिष्या तथा श्री म ट्रस्ट की आजीवन अध्यक्ष श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने वर्ष 1997 में चण्डीगढ़ रामकृष्ण मिशन आश्रम में एक लाख रुपए की धन राशि रख दी थी जिसके ब्याज से प्रतिवर्ष श्री श्रीठाकुर के 'व्यास' श्री 'म' (मास्टर महाशय) का उत्सव आश्रम-प्राङ्गण में मनाया जा सके। गत वर्ष 25 अक्तूबर, 2014 को इस उत्सव का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर रामकृष्ण मिशन आश्रम, चण्डीगढ़ के सचिव श्रीमत् स्वामी सत्येशानन्द जी ने एकत्रित/समवेत भक्तों, जिज्ञासुओं को बताया कि श्री म एक 'versatile genius' (कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न, अपूर्व मेधावी) पुरुष थे। कथामृत-लेखन के लिए we are eternally beholdened to him हम उनके चिर ऋणी रहेंगे। योगानन्द जी की "An Autobiography of a yogi" में एक अध्याय श्री म को उत्सर्गीकृत है जो श्री म को वैदिक ऋषियों की कोटि में रखता है।

"श्री म की कथामृत पढ़कर तभी तो स्वामी विवेकानन्द ने कहा था— 'This work was reserved for you'— कथामृत-लेखन का कार्य आपके लिए ठाकुर द्वारा सुरक्षित रखा गया था।"

इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने कहा कि मास्टर महाशय ने अपने जीवन से चार महावाक्य सूत्र रूप में हमें दिए— (1) ईश्वर ही सब कुछ हैं— God alone is everything. (2) This world is His play, यह जगत् उनकी लीला है। सुख-दु:ख में जगन्माता की ही इच्छा देखने से शान्तिपूर्वक जीवन जिया जा सकता है। (3) Nothing happens without His will— ईश्वरेच्छा बिना कुछ भी होता नहीं— तेन विना तृणमपि न चलति। (4) शान्त, कूटस्थ स्थित प्रज्ञ भीतर से महायोगी संन्यासी श्री म 'हरि कथा ही कथा और सब व्यथा' के विग्रह थे। चौथा सूत्र उन्होंने अपने जीवन से यह दिया कि ईश्वर ही कर्त्ता हैं, हम सब अकर्त्ता।

— डॉ० नौबतराम भारद्वाज

श्री 'म' ट्रस्ट के प्रकाशन

1. श्री म दर्शन

बंगला संस्करण— भाग 1 से 16— स्वामी नित्यात्मानन्द

श्री म दर्शन महाकाव्य में ठाकुर, माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द तथा अन्यान्य संन्यासी एवं गृही भक्तों के विषय में नूतन वार्ताएँ हैं। और इसमें है कथामृतकार श्री 'म' द्वारा 'कथामृत' के भाष्य के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, चण्डी, पुराण, तन्त्र, बाइबल, कुरान आदि की अभिनव सरल व्याख्या।

2. श्री म दर्शन

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 16

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता द्वारा बंगला से यथावत् हिन्दी-अनुवाद।

3. श्री म दर्शन

अंग्रेज़ी संस्करण— ('M'— The Apostle and the Evangelist)

श्री 'म' दर्शन ग्रन्थमाला का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता ने 'M'— The Apostle and the Evangelist नाम से किया है। ट्रस्ट के पास प्रथम बारह भाग तो उपलब्ध भी हैं। शेष चार भाग अभी मुद्रण-प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

4. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita Centenary Memorial

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता और पद्मश्री डी०के० सेनगुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में सम्पादित वृहद् ग्रन्थ, जिसमें ठाकुर श्रीरामकृष्ण, 'कथामृत', श्री 'म' और 'श्री म दर्शन' पर श्रीरामकृष्ण मिशन के संन्यासियों समेत अनेक गणमान्य विद्वानों के शोधपूर्ण लेख हैं।

5. A Short Life of Sri 'M'

स्वामी नित्यात्मानन्द जी महाराज के मन्त्र-शिष्य और श्री म ट्रस्ट के फाउँडर सैक्रेट्री प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा अंग्रेज़ी में लिखी गई श्री म की संक्षिप्त जीवनी।

6. Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा लिखित श्री म के जीवन तथा 'कथामृत' पर शोध प्रबन्ध

7. श्री श्री रामकृष्ण कथामृत

हिन्दी संस्करण— भाग 1 से 5

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के श्रीमुख-कथित चरितामृत को अवलम्बन करके ठाकुरबाड़ी (कथामृत भवन), कोलकता-700 006 से 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' का (बंगला में) पाँच भागों में प्रणयन एवं प्रकाशन किया था।

इनका बंगला से यथावत् हिन्दी अनुवाद करने में श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता ने भाषा-भाव-शैली— सभी को ऐसे सरल और सहज रूप में संजोया है कि अनुवाद होते हुए भी यह ग्रन्थमाला मूल बंगला का रसास्वादन कराती है।

8. Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

English Edition

श्रीमती ईश्वरदेवी गुप्ता के हिन्दी-अनुवाद से प्रोफेसर धर्मपाल गुप्ता द्वारा कथामृत का अंग्रेज़ी-अनुवाद। सभी पाँचों भाग प्रकाश में आ चुके हैं।

9. नूपुर

वार्षिक स्मारिका

श्री म ट्रस्ट के संस्थापक और हम सब के पूजनीय गुरु महाराज स्वामी नित्यात्मानन्द जी के 101वें जन्मदिन पर उनकी स्मृति में 'नूपुर' नाम से सन् 1994 ईसवी में एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ था। उसी स्मारिका ने अब वार्षिक पत्रिका का रूप ले लिया है, जिसमें

अन्य बातों के अतिरिक्त ठाकुर रामकृष्ण परमहंस, माँ सारदा, श्री म, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी नित्यात्मानन्द, 'श्री म दर्शन' आदि के बारे में प्रचुर सामग्री रहती हैं। साथ ही कथामृतकार श्री म के द्वारा 'श्री म दर्शन' में कही उन बातों को भी प्रकाश में लाया जाता है, जो 'श्री श्री रामकृष्ण कथामृत' में नहीं हैं।

❖